

छछिया भर छाछ

छछिया भर छाछ

(कहानी-संग्रह)

महेश कटारे



अंतिका प्रकाशन

ISBN 978-81-906567-5-7

छछिया भर छाछ

© महेश कटारे

पहला सजिल्द संस्करण : 2008

मूल्य : 200.00 रुपए

प्रकाशक

अंतिका प्रकाशन

सी-56/यूजीएफ-4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-II,

गाज़ियाबाद-201005 (उ.प्र.)

फ़ोन : 0120-6475212

ई-मेल : antika1999@yahoo.co.in

आवरण चित्र : एन्ड्रयु वायथ

आवरण सज्जा : अंकन

मुद्रक : आर.के. ऑफसेट प्रोसेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

CHHACHHIYA BHAR CHHACHH

(A Collection of Short Stories) by Mahesh Katare

Price : Rs. 200/-

अनुक्रम

छछिया भर छाछ	7
काँख में नदी	19
बकरबटा	28
इकाई, दहाई...	33
प्रेत-पग	42
गोद में गाँव	51
बाधा-दौड़	57
आदि पाप	62
तूर्यनाद	77
कोई पवित्र युद्ध	89
अंकगणित में विदूषक	95
कुकाल में हंटर	103
सपना तेरे लिए नहीं	122

छछिया भर छाछ

हर नुक्कड़ पर ठट्टे थे। गो कि अलाव उसी अनुपात में कम हो चुके थे जिस अनुपात में बैलों से खेती। खेतों में बैलों की घंटियों से टुनटुन की जगह ट्रेक्टर की भटर-भटर है। हफ्तों क्या पखवाड़ों का काम दिन रात में निपटता है। कभी शौक्रीन किसान जुए से ट्रांजिस्टर बाँध जुताई करते थे अब कम्पनियों ने ट्रेक्टर में ही टेप फिट कर बेचना शुरू कर दिया है। मतलब पहले की चीजों के निशान ही बाक़ी रह गए हैं। मनोरंजन के नए-नए साधन खेत-खलिहान तक पहुँच आदमी को भले ही अपने में बाँध रहे हों पर चरित-चर्चा और निंदा-रस के मन्ने पाने के लिए अभी भी समूह की आवश्यकता है, सो एक दूसरे को सूँघते साँघते इकट्ठे होकर यही चर्चा कि रमैनी ब्याह करने गया है। इसी लगन में...

“बरात कहाँ गई? कौन-कौन गया? भाई तो घर में बैठे हैं। न ढोलक बजी, न काजल मेंहदी हुआ और सबसे बड़ी बात तो ये कि खसिया के पल्ले बँधेगी कौन? झूठ-मूठ का प्रचार है।”

“झूठ निकले तो मेरे मुँह में थूक देना।”

“तुम्हें कैसे पता चला?”

“मुझे जगदीश ने बूझा था।”

“जगदीश को किसने कहा?”

“उसे उसकी घरवाली ने बताया। मेरी ने भी मुझे बताया। खेरे गई सब औरतों को पता है। उन्हें खुद रमैनी की भौजाई ने दुखड़ा रोया। अब जानते ही हो कि खेरा औरतों की चौपाल है—फरागत होने के साथ वहाँ सुख-दुख और जानकारीयाँ भी बँटती रहती हैं।

सो खेरे नामक केंद्र से प्रसारित हुई वार्ता गाँव की गली-गली में गूँजने लगी। अब गाँव ही नहीं असफेर की चौहद्दी तक जानती है कि रमैनी छूँछा है। एक दो दस नहीं, उसके सैकड़ों हम उम्र गवाह हैं कि...। सबसे बड़ा सबूत तो खुद रमैनी है जो उम्र के तीसवें पड़ाव तक इस तरह के तानों फ़िक्रों को हँसी में उड़ाते

हुए या चुप्पी साधकर मान्यता देता रहा। मर्दों की तो बात क्या, कुछ जनानियाँ तक हलफ़ उठाकर कह सकती हैं कि...। उन्होंने जैसे भी परीक्षण किया हो पर निष्कर्ष यही कि रमैनी पंडित में मर्दों वाली चीज़ नहीं है।

रमैनी यानी रामायणी प्रसाद शर्मा। छरहरापन लिए गठी हुई देह। भैंसे-सी ताकत। किसी की बाँह पकड़ ले तो सड़सी-सा कस देता है। नामी पहलवान तक हाथ नहीं छुड़ा पाते। पीठ पर घूँसा धर दे तो अच्छे अच्छों के कपड़े खराब हो जाएँ। सैकड़ों बार परख हो चुकी है—भैंस को तेल अथवा दवा पिलाना कसाले का काम है और यह हिलमुतान गर्दन के ऊपर से एक बाँह डाल भैंस का मूँह ऊपर उठा जबड़े फाड़ देता है कि लो! जो चाहो सो उँडेल दो टेंटुआ में। भैंस की पिछाड़ी भले मचमचाए पर आगे के पैर और गर्दन नहीं हिलने देता। बैल बछड़ों को बधिया करते समय रमैनी की उपस्थिति ज़रूरी मानी जाती है। उसी रमैनी को अगर संकेत से भी शिखंडी कह दो तो ऐसे सिकुड़कर पिघलने लगता है जैसे जोंक पर नमक भुरक दिया हो।

रमैनी के हम उम्र सैकड़ों जवान थे जो टोल में, गाँव में, रिश्तेदारी में उसके बचपन के साथी रहे। तब बच्चे के पैदा होने के साथ ही कमर से चड्डी बाँध देने का रिवाज नहीं था। आठ दस की उमर तक लड़के प्रायः नंगे रहते थे। इस छूट में लड़कियों की उमर कुछ कम रखी गई थी यानी जो लड़कों के लिए न्यूनतम थी वह लड़की के लिए अधिकतम। इसके बाद उनकी कमर में लहंगा लटका दिया जाता। अब दृश्य यह बनता कि खेलते झुंड में लड़कियाँ कमर से नीचे ढँकी होतीं और लड़के कमर से ऊपर। खेलो में टिककी, कबड्डी थपर कोड़ी प्रचलित थे जिसमें अन्य किसी सहायक उपकरण की आवश्यकता न होती। लड़कियाँ कछोंटा माकर कबड्डी खेलती थीं। गाँव के बगल से बहती छोटी-सी नदी में अविवाहित कन्याओं को ही नंगे नहाने की छूट थी। गौरी, रोहिणी, कन्या अर्थात् आठ, नौ, दस की वय में लड़की सुहागिन बन जाती। उसके बाद कुछ हिस्से ढँके रहने लाज़िमी थे।

लड़कों के लिए ऐसी कोई बंदिश न थी अतः उनके पौरुषीय अवयव सर्व साधारण की निगाह में होते। इन्हीं दिनों सभी को ज्ञात हो चुका था कि रमैनी 'काम' का नहीं और इसी कमतरी के कारण उसका नाम भी रामायणी से सिकुड़कर रमैनी रह गया।

रमैनी अपने भाइयों में मँझला है—यानी न ऊपर न नीचे अर्थात् बीच का। कहावत प्रचलित थी कि, “बड़े का बाप छोटे की माई, मँछले का रामसहाई।” तो पाँच भाई बहनों में अकेला रमैनी कुँआरा बचा। माँ बाप बत्तीस बीघा सिंचित ज़मीन और जजमानी छोड़ मरे थे जिसमें रमैनी तिहाई का हकदार हुआ किंतु

भविष्य के हिसाब-किताब में रमैनी का हिस्सा भी शेष दो भाइयों की संतान के भाग्य में जोड़ा जाता था।

इस मँहगाई के युग में जब से डॉक्टरों, इंजीनियरों और अफ़सरों ने अपनी अनाप-शनाप कमाई को ज़मीनें ख़रीदकर कृषि आय के रूप में वैधता देनी शुरू की है तबसे खेतों की क़ीमते रॉकेट होती जा रही हैं। इस तरह क़ायदे से रमैनी सात आठ लाख का ठहरता है। गाँव वाले हितैषियों ने गाहे-बगाहे यह बात रमैनी के कानों में भरने से कोई चूक नहीं की। इधर भाई-भावज मान बैठे कि उसका और कहाँ ठिकाना है सो गोंड़ा में पशुओं के बीच उसकी खटिया का भी खूँटा गाड़ दिया किंतु रमैनी के मन को भारी ठेस उस दिन लगी जब बगल में भोजन पाते भाइयों को घी से तर रोटियाँ परोसी गईं और उसे सूखी। वह झेल नहीं पाया और थोड़े कोप के साथ पूछ बैठा—

“घी ख़त्म हो गया का भौजी?”

भावज ने उत्तर में कहा था, “हाँ ख़त्म ही समझो, बस दो एक दिन घिसने भर है।”

“तो मेरी रोटियाँ क्यों न घिसीं?”

बड़ी का घर में मालिकाना था। पति तक उनसे हिसाब न पूछते। सवाल उन्हें मालिकी में हस्तक्षेप प्रतीत हुआ, सो अनायास ही कह गई, “तुम्हें कौन-सा रन चढ़ना है लल्लू?”

बस। उसी समय रमैनी ने अपनी थरिया सरका दी, “अब मैं रन चढ़के ही दिखाऊँगा भौजी।” भविष्य की आशंका से बड़े पंडित की थरिया भी छूट गई। गोंड़ा में उसे मनाने दोनों भाई पैताने खड़े रहे। बड़े पंडित जो कभी अपनी पत्नी से ऊँची आवाज़ में नहीं बोले थे उन्होंने रमैनी की सांत्वना के लिए उन्हें हरामज़ादी, कुतिया तक से अलंकृत किया किंतु रमैनी की चोट न सिराई। इसके बाद गाँव के चुगलखोरों की बन आई। रमैनी का गोंड़ा हफ़्ते-भर तक घर बिगाड़ने वालों का रात्रिकालीन अड्डा बना रहा।

फिर भी किसी की न सलाह थी न अनुमान कि रमैनी ब्याह कर सकता है। अतः जिस किसी को भी, जैसे भी सूचना मिली वह भौंचक था। भौंचक रमैनी का भावी श्वसुर भी रह गया था जब मध्यस्थ के माध्यम से रमैनी और उसका आमना-सामना हुआ। मध्यस्थ ने रमैनी का कोई संदर्भ न छुपाया था। एक चोखा ब्राह्मण अपने से कई सीढ़ी नीचे वाली जाति से रिश्तेदारी को प्रस्तुत हो, यह उसे पच नहीं रहा था। शिखंडी ब्याह क्यों करेगा? फिर जब उसने रमैनी की क्रद-काठी देखी तो रमैनी विषयक लोकापवाद पर भी उसे संदेह हुआ। तीसरी और अंतिम बात यह थी कि उसकी पुत्री कम-से-कम इतनी प्रसिद्ध हो चुकी थी कि

जात बिरादरी का कोई भाँवरे डालने को तैयार न हो रहा था। वह कैसे भी अपनी पुत्री रामरती के पैर घर से फेरना चाहता था, चाहे वे श्मसान में जाकर ही ठहरें।

पिता की व्यथा रामरती समझती थी। वह स्वयं भी अपने आपको कोसती, विधाता को गालियाँ देती कि उसकी देह में इतनी अग्नि क्यों भर दी कि बड़े-बड़े मूँछें उमेठने वाले खेत रहे। वह दो बार घर से भाग और प्रेम की कसमें खाने वालों को लात मारकर लौट चुकी थी। अपने अनुभवों से उसने जो जाना व सीखा तो पिता की स्थाई उदासी पोंछने के लिए वह नरक में भी ठिकाना बनाने को तैयार थी।

ऐसा नहीं कि गाँव-भर के तानो-तिशनों, उपहास से रमैनी विचलित न हुआ हो। अपने होने की सार्थकता की तलाश में वह भी घर से भागा। कुछ दिन नौटंकी कम्पनी में रह नचनियाँ बनने का प्रयास किया किंतु वहाँ भी उसकी देह चुगली कर देती। छह महीने बाद वह भी लौटा। उसके न होने पर एक फसल चौपट हो गई थी, इसी कारण नचनियाँ का काला टीका लगा होने पर भी उसका घर लौटना स्वागत भाव से ही देखा गया। घरवाले जब उसका बधियापन स्वीकार कर चुके थे तो उसका नचना होना भी झेल गए। रूप-स्वरूप बनाने बिगाड़ने वाला ईश्वर है। फूल बनाये या काँटा, स्वीकार करना ही होता है।

जायदाद के साथ कमोबेश तीस चालीस हजार सालाना का आदमी तो यूँ ही है रमैनी। खुद पर होने वाले खर्च से दुगुना अपनी देह लगाकर कमा देता है। बरद की तरह जहाँ जोत दो। बरद को तो जान बूझकर बधिया किया जाता है ताकि वह ड्योढ़ी दुगुनी शक्ति से जुते और मरखा भी न हो। इस प्रकार रमैनी घर से गाँव, रिश्तेदारी तक वह अस्तित्व पा चुका था कि उसका वैसा न होना कहीं कुछ कमी होने या खटकने की बात होती। घर से इतर तो वह यूँ था जैसे मूँछें होने से न जबड़े की शक्ति बढ़ती है न दाँतों की। शरीर के बल, बुद्धि पर भी कोई अंतर नहीं आता। निहायत फ़ालतू होने पर भी वे पहचान का हिस्सा हो जाती हैं। मूँछ वाले को मुछमुंडा पा कोई भी अचानक गड़बड़ा जाएगा। इसलिए जिन्हें कोई हानि लाभ न था वे भौंचक थे।

भाइयों की चिंता जायज़ थी। तय था कि उनके घर आनेवाली बहू कोई सीधी-सच्ची गाय न होकर छँटी हुई होगी। तभी तो उस आदमी के बिछुआ पहनेगी जो पुरुष धर्म निभाने के जोग ही नहीं है। निश्चय ही जायदाद के लोभ से आएगी—मक्खी गुड़ के पास ही भिनभिनाती है। ख़ैर बँटवारा भी सहा जा सकता है। भाइयों में होता ही है किंतु डर आगे का है। खाती-पीती देह कुछ और भी माँगती है इसलिए या तो वह जायदाद की रकम बनाकर उड़ेगी या घर को रंडीखाना बनाएगी। घर भीतर का उत्तेजित निर्णय रहा कि कुचलन पै गला रेत देंगे। किसका

गला?...कौन रेतगा, यह खुलासा न होकर सही समय पर उचित निर्णय के लिए छोड़ दिया गया।

रमैनी का घर अंदर ही अंदर हँडियाँ की तरह खदबदा रहा था कि रमैनी घरवाली लेकर आ पहुँचा। ऐसा ब्याह चौकोसी में न देखा गया था। भरोता अर्थात् खरीदकर लाई गई औरतें भी परिवार ही नहीं, जाति बिरादरी की सहमति से ठोक बजाकर लाई जाती हैं, गोत-नाते निबेरे जाते हैं, खाँप तक का विचार बाँध सम्बन्धित का खारा-मीठा पानी सोधा जाता है। वहाँ ये ऊँची जाति का खसिया जाने कहाँ से किसको पकड़ लाया? ब्राह्मणी तो हो ही नहीं सकती।

लाया भी तो घर छोड़ किसी दूरदराज दिल्ली, मुंबई, पूना से लाता। झूठ ही कहा जा सकता कि अलौ-फलाँ-देस के ब्राह्मण परिवार की बेटी है। आज किसको इतना टैम है कि पता लेकर खुर खोंटता फिरे। किंतु यह तो खानदान की जान का दुश्मन होकर बारह कोस की दूरी पर ही ससुराल बना बैठा। चार दिन में सबको पता चल जाएगा कि पालागन लेते-लेते जिस घर के हाथ दुख जाते हैं उसी घर में आनेवाली के हाथ का पानी तक नहीं पिया जा सकता। अगैड़ी बगैड़ी जाति में चल भी जाये पर मान्य धान्य पंडित पुरोहित ही ऐसा करने लगे तो समझो सचमुच घोर कलजुग छा गया। गाँव रमैनी पर ही नहीं, आड़ ओट से पूरे कुल पर थूक रहा था। थूकने में ब्राह्मण का मुहल्ला सबसे आगे था।

पर रमैनी सबको कुत्तक पर रख रात झमकते घरवाली लेकर आ ही गया। झिटपुटे में सिर पर बकसिया धरे छन्-छन् पाजेब बजाती महरिया के आगे-आगे वह गाँव में धँसा और ठेठ बम्हनियात पार कर अपनी पौर के आगे जा खड़ा हुआ। बड़े, छोटे दोनों भाई चौतरा पर खटिया डाले ऐसे मुरझाये बैठे थे जैसे घर में गमी हो गई हो।

आगे आनेवाले दृश्यों की संभावना पर करी छाती लिए रमैनी ने चौतरा की कोर पर बकसिया धर परंपरागत ढंग से बड़े भाई के पैर छुए।

“को है?” जानते बूझते भी पूछकर बड़े पंडित ने जैसे स्वयं को अगली कार्यवाही के लिए तैयार किया।

“दद्दा मैं!...रमैनी।”

“को रमैनी?”

“काये भैया! दो दिनों में ही भूल गए अपने रमैनी को?”

“हमारो रमैनी तो मर गयो।” कह खड़े होते दद्दा ने खटिया के नीचे सरकी पनहीं उठाई और रमैनी की चाँद पर ताबड़तोड़ बरसाने लगे। रमैनी इस कार्यवाही के लिए पहले से तैयार था। बड़े भाई का हक्र है यह। बड़े पंडित हक्र वसूलते हाँफने लगे किंतु रमैनी ने अपने सविनय अवज्ञा आंदोलन को किंचित भी शिथिल

न होने दिया। इस बीच छोटी बड़ी दोनों गृहलक्ष्मियों ने मिलकर पौर के किवाड़ उड़का साँकल चढ़ा दी तथा अगली आँखन देखी के लिए छज्जे पर पहुँच गई।

नई लक्ष्मी रामरती अभी तक घूँघट काढ़े रास्ते पर खड़ी थी जहाँ से दो क्रदम आगे उसके भरतार को सटासट जूते लगाए जा रहे थे। बड़े भाई ने फूलती साँस पर काबू पाने के लिए हाथ बंद कर पैर से काम ले बकसिया को ठोकर जमाई। खड़खड़ाती बकसिया गैल पर आ गिरी। सावधानी के बावजूद लगी चोट से दद्दा का पैर झनझना गया। चोट सहलाने की उन्हें तीव्र आवश्यकता महसूस हुई किंतु इससे क्रोध का घनत्व कम प्रकट होता अतः दबा कर मिसमिसाने लगे।

ठीक इसी समय आसपास व नुक्कड़ों से झाँकते नर-नारियों, बाल-गोपालों ने नई दुल्हन की तरहदार आवाज़ सुनी, “खबरदार जेठ जी। अब मेरे मरद को पोरा भी लगाया तो बुरा हो जाएगा।...कहे देती हूँ।”

गाँव में किसी निहायत नवेली की यह अपने ढँग की निहायत पहली आवाज़ थी जिससे पीढ़ियों के मान्य वरिष्ठता अधिकार को इतनी ठेठ भाषा में ललकारा गया। क्षण-भर को चौंते से छज्जे तक सन्नाटा खिंच गया।

दद्दा मुँह बा गये तो छोटा मोर्चे पर आया, “भाइयों के बीच बोलने वाली तू कौन होती है?”

“और तू कौन है रे मूसरचंद! अभी तक नहीं समझा कि मैं रामायनी पंडित की घरवाली हूँ। और हाँ, भगाकर या खरीदकर नहीं, वे मुझे कायदे से सात भाँवरे डालकर हारे हैं। हमारे पंडित ने दुख-सुख में साथ देने का बचन हरवाया है देवताओं के आगे। घर की बात में तू काये टिल्ल टिल्ल करता है?”

“अरे साली! कुतिया! मुझसे जबान लड़ाती है।...उधेड़ के रख दूँगा। भागते गैल न मिलेगी।” छोटा क्रोध में फनफनाता झपटा।

अब रमैनी की बारी थी, “ए लला! कुफर मत बोल। तोसे बड़ी है ये। भौजी है तेरी...मरजाद में रह! नहीं तो मेरा भी हाथ उठ जाएगा।”

यह भी नई आवाज़ थी। सब जानते हैं कि रमैनी तीन चार को एक संग रगेद सकता है। कुदरती बधिया साँड़ है। न बोले तो सिर न हिलाए, बिगड़ पड़े तो काबू न आए।

छोटा सटपिटाकर फन दबे साँप की तरह ऐंठता बोला, “तेनें नाक तो कटा दी पर ये इस घर में क्रदम न रख पाएगी—चाहे मेरी जान चली जाए...कहे देता हूँ। कुरमनाठ हो जाएगी।” घूँघट के भीतर से नई बहू फिर कूकी, “जेठ जी! समझायदो इन्हें। गाली न दें। पहली बेर का माफ करे देती हूँ। आगे कुबोल निकाला तो सीधे थाने पहुँच जाऊँगी। वैसे आप जी बड़े हैं। आपकी जूतियाँ झेल लेंगे पर लहुरे से ऊँच नीच न सुन पायेंगे।”

आसपास बिखरो में से कुछ नजदीक झिमट आए। एक ने कान से लगकर सलाह दी, “मुँह न लगे पंडितजी। खेली खाई औरत है, हरिजन एकट की धोंस दे रही है। इस एकट में झूठ सच का निबेर नहीं, आदमी सीधा अंदर होता है।”

हिमायतियों ने पंडित जी की फूँक सरका दी। लाज बचाने की दीनता में वह अड़ गए, —जहर खाके प्राण दे दूँगा पर इस कुजात को देहरी न लाँघने दूँगा।”

बड़े भाई की दीनता पर रमैनी द्रवित हो उठा। इतना वह भी जानता है कि अपमान से आपा खोकर अनहोनी तो वह कर बैठा। अपने छलछलाते आँसू पोंछता, भरिये गले से कहने लगा, “ठीक है दद्दा! इतने से तुम्हारी बात बनती है तो हम न घुसंगे घर में। मेरा बास वैसे भी गोंडा रहा, ये भी रह लेगी। हाँ अपने बैल भैंसों की व्यवस्था कल से कर लेना।”

“नई तो हम, नाथ मुहरी काटकर गोंडा से बाहर हाँक देंगे।” टीप जड़कर गली में लुढ़की बकसिया सहेजती रामरती ने पति को सम्बोधित किया, “चलो जी! भगवान का नाम लो। मेहनत करेंगे तो गोंडा भी हवेली में बदल जाएगा।”

बकसिया लटकाकर फिर रमैनी आगे हुआ और घूँघट वाली रामरती पीछे। रामरती की ठसकीली चाल में रमैनी का पौरुष झाँकता दिखाई पड़ने लगा था। गोंडा बसाहट से इतना ही अलग था कि गाँव की रिंगरोड यानी कच्ची गैल बीच में पड़ती थी। दो दिन वहाँ रखवाली के लिए पंडितजी को सोना पड़ा था। पंडिताइन ने बू मारती रमैनी की दरी और झिलंगी खटिया से परहेज बरतते हुए घर से गद्दा, चदरा, तकिया भेजा था जो घरी किया हुआ वहीं धरा था। उनकी तीव्र इच्छा हुई कि उठा लाएँ किंतु स्थिति की नाजुकता समझ मन मसोसकर रह गई। विवशता में उन्होंने यह सोचकर धीरज धरा कि कपड़ों लत्तों में रमैनी का भी हिस्सा तो है ही। बहती चोली ननद को दान।

रमैनी दंपति के जाते ही उड़के किवाड़ों की साँकल खुल गई। चर्चा सुनने छोटी बड़ी गृहलक्ष्मियाँ किवाड़ों से आ चिपकीं। दूसरे मुहल्लों से भी लोग आ पहुँचे थे। प्रकटतः सभी के वचन कुल की सहानुभूति व रमैनी भर्त्सना में पगे थे।

बस्ती में यह प्रसंग रोजमर्रा कामों के साथ महीनों चलना है। सुबह दुहाऊ, चारे पानी, गोबर टहलपात के ढर्रे पर चलते जीवन में ऐसे प्रसंग छौंक बघार की तरह एकरसता को तोड़ते हैं। कल्पना के परेवा सुरसुरी के संग रोज नई उड़ान जोड़ते हैं। यहाँ सरकारों का बदलना तक चार दिन में बासी हो जाता है किंतु फौजदारी, रति-प्रसंग, भागना-भगाना प्रतिदिन नयापन पाते रहते हैं। सरकारें आने जाने में रस कम होता है कि किस जाति ने मैदान मारा, कौन-कौन खेत रहीं। बाक्री पटवारी, कलेक्टर, थानेदार, चोर-डकैतों की सरकारें तो वही की वही होती हैं। फ़िलहाल अलाव से लेकर चूल्हे तक रमैनी छाया हुआ था।

गोंडे में उजाले के लिए न चिमनी थी न दिया बाती। चढ़ते पखवारे की चौथ का चंद्रमा ज़रूरी चीजों की पहचान उभारने लगा था। झिलंगी खटिया दीवार के सहारे खड़ी कर दी गई थी, उसी पर रमैनी की दरी झूल रही थी। हतरेटिया वाला मिट्टी का घड़ा मुँह पर स्टील की घंटी साधे जसका तस था। बजारू पाये व चौकोर पाट वाली नये बान की खाट और बड़े के बिस्तर गोंडे के बीचों बीच रखे मिले।

रमैनी ने उसी खाट पर रामरती को बिठाकर बकसिया सम्हलाई और पहला काम यह किया कि घड़े को धो-धाकर हैंडपंप से पानी खींच लाया। दोनों प्राणियों ने हाथ-पैर धो थकान छुड़ाई तो दुल्हन के स्वागत की जगह मिले अपमान का अवसाद फोड़कर भूख सिर उठाने लगी। भूख तो मौत के बीच भी अपने करतब से नहीं चूकती। रमैनी ने दूसरी फेरी लगाई और थोड़ी ही देर में अँगौछे में आटा और मिर्च के अचार सहित प्याज की दो गाँठे बाँध लाया। यूँ प्याज उसके चौंके की वर्जित वस्तु रही है पर जब जाति में ही संध लग गई तो प्याज क्या कर लेगी।

बाँट की भुरकनी वाली थरिया को धो-पोंछ रामरती ने आटा गुँथा और अँगीठी सुलगाकर हाथ की अँगाकरी सेंक लीं फिर कुचरी हुई प्याज की गठिया का जो स्वाद रमैनी ने पाया वह भी पहला था। कहा जा सकता है कि दोनों सुख की नौद सोये।

रमैनी के दिन फिर ढर्रे पर ढरकने लगे। पानी मचने से ऊपर उतराई कीचड़ अपने तल में बैठती गई। बँटवारे की पहल न भाइयों ने की, न रामरती ने कोई बखेड़ा किया। बड़े भाई को जजमानी से अवकाश न था, छोटा सदा से अलाल। खेतों की रखवाली, चौपे चउआ रमैनी के अलावा कौन सँभालता। रमैनी से नाता छोड़कर धरम भले चले, धन की हानि हो जाती। ऊपर से रमैनी के अब चार हाथ हो गए थे। रामरती घर सँभालकर हारखेत में भी हाथ बँटाती। रमैनी की गिरस्ती जमने लगी। परिवार वालों ने भी मान लिया कि फोड़े के दर्द से चीरा तक तो ठीक, बाँह नहीं काटी जाती।

ब्याह की धूल दबती जा रही थी कि फिर बवंडर सनसनाया। रमैनी की रमरतिया पेट से है। औरतें टोह में रहने लगीं। छाछ माँगने के बहाने लगातार आकर नाइन की पैनी निगाह ने नाप जोख की—हाँ रमैनी बाप बनने वाला है।

रमैनी परमानंद में फूला-फूला फिरता। लोग ठट्टा करते पर उसे परवाह नहीं। कुटिल हँसी और अपमान जनक सम्बोधन वह होश सँभालने के बाद से भोगता रहा है। बातें रामरती तक भी पहुँचती, वह कसमसा उठती फिर सिर झटक गर्भ सेने व गृह काज में लग जाती। गोंड़ा की मड़ैया अब खपरैल में बदल चुकी थी। कच्ची घिनौची पर पीतल का घड़ा व तम्हेड़ी चमचमाती। चूल्हा ओटा

चकाचक रहता। रामरती की चाय में पानी नहीं पड़ता, खालिस दूध की बनती है। रामरती क्रायदे से तिहाई दूध अपने लिए निकालकर शेष दुहना में ढाँककर रख देती जिसे दोनों बरिया जिठानी गुपचुप उठा ले आतीं। सब ठीक-ठाक हो रहा था पर गाँव की ओर से रोज़ बरोज़ उड़ाई जाती धूल की फाँसों रामरती की साँसों में अटक जातीं।

यह तो तय हो गया कि रमैनी बाप बनेगा पर इसका सुआडोरा नहीं लग पा रहा था कि बीज किसका पड़ा। रात-बिरात न कोई गोंड़ा में घुसते निकलते देखा गया, न रामरती मायके गई। खेत खलिहान तक में रामरती को किसी से हँसते बोलते न देखा गया था। वह तो जैसे सती सावित्रियों के कान काटने पर तुली थी। “फिर कैसे?” गाहे-बगाहे यहाँ यही मरोड़ उठ जाती।

उस दिन हाथ में अल्यूमिनियम की देगजी लटकाए बँधावाली गोंड़ा में पहुँची। रामरती ने रमैनी के मुँह सुन रखा था कि बँधावाली भौजी गाँव की सबसे चतुर सुजान औरत है। रास्ते में आते-जाते रामरती से उनकी भेट प्रायः होती किंतु “कैसी हो” “अच्छी हूँ” से बात आगे न बढ़ी थी। रामरती चूल्हे पर पीतनी माटी का पोता फेर रही थी। आहट पाकर वह रसोई की खपरैल से बाहर निकली और हाथ धोकर बैठने को पीढ़ा दिया। जिठानी के नाते पांय लागी की और देगजी उठा मठा भरने लगी।

“तू तो हमें जल्दी-से-जल्दी टकराने पर तुली है देवरानी!” बँधावाली ने चाशनी भरे बोल कहे।

“तुम्हारी चाय की बड़ी तारीफ सुनी है, हमें न पिलाओगी?”

“घर तुम्हारा है जिज्जी! चाहे जो बनाओ खाओ!” रामरती ने आदर भरी छूट दी।

“तो यहाँ भी हमें चूल्हा फूँकना पड़ेगा?” लाड़ और गाढ़ा हुआ।

“नहीं, मेरा मतलब था कि हमारे हाथ का...।”

“अरे देवरानी बनकर आधी बाम्हनी तो होई गई तुम। अब काये का छूतपात?” बँधावाली ने दूरी कम की।

“बैठो! अब बनाये देते हैं।” रामरती चूल्हा सुलगाने खपरैल में घुस गई और चाय चढ़ाकर तश्तरी में गुड़ की डली तथा पानी का गिलास लेकर लौटी।

गुड़ की डली कुतरते हुए मुस्कान के साथ बँधावाली ने बताया कि, “आज वह फुरसत में है। रोटी पानी करनी नहीं...दिन चल रहे हैं।”

रामरती भी मुस्कुरा दी।

“हाँ बहन सुना है कि महीना चढ़ गए हैं तुम्हारे?” बँधावाली ने कमेंट फेंकी।

“तुम सबका आसीरवाद है जिज्जी!”

“सो तो राम की मौज है, पानी से पैदा करता है। हमें तो भारी खुसी हुई कि रमैनी लला ठीक है गये। काये से कि ब्याह के आये हम तभी से सुनते रहे कि वे काम के नहीं। किसी-किसी के हाथ में जस होता है, तुम आई तो वो भी मरद हो गए।”

रामरती उठकर चाय लेने चली गई। चाय की प्रशंसा करती बँधावाली ने फिर बात उकसाई, “बहन बुरा न मानो तो कछू कहूँ?”

“तुम कौन-सी हिस्सा बाँट की बात करोगी जिज्जी कि मुझे बुरा लगे।”

“अब कैसे कहें कि गाँव में खुसुर-पुसुर है कि...।” बँधावाली ने डोर ढीली की।

“काये की खुसुर-पुसुर?” रामरती ने अपना सतर्क होना जाहिर न होने दिया।

“ले ओ! मैं भी कौन-सी बात ले बैठी? आग लगे इस मुँह को पर का करूँ काऊ की निंदा चुगली अपन से सहन नई होती। अरे बात है तो मुँह पै कहो। पीठ पीछे तो लोग बाईसराव को गाली दे लेते हैं। मैंने तो कहनेवाली से कह दी। घर में दूध पूत से ही रौनक होती है। कैसे भी हो, माना तो रमैनी लला का ही जावेगा। बीज कहीं का हो, पैदावार का मालिक खेतवाला ही होता है।”

रामरती एड़ी से चोटी तक लपलपा गई किंतु अपने को लगाम लगा उसने बात हँसी में टरकाई, “ऐसा यहाँ चलन है का जिज्जी?”

चतुराई से अच्छे अच्छों को चित्त करनेवाली जिज्जी इस ठेठ और भदेस प्रश्न से एकदम तो लड़खड़ा गई पर सँभलकर माथा सिकोड़ती बोली, “भले घरों में ऐसा नहीं होता। रैयत में भी ये घसड़-पसड़ नहीं चल पाता।”

“खेत बीजवाली कहावत कौन कारन बनी फिर?” रामरती का भोलापन शातिर हुआ।

“कहावत तो कहावत है बहू! जाने कहाँ से निकले और कहाँ तक पहुँचे।”

जीवन के उतार चढ़ावों ने रामरती को भी कच्ची-पक्की पाटी पढ़ा दी है। यौवन की बाढ़ में बहुत दूर तक डूबते-उतरते उसने रमैनी का सहारा स्वीकार किया था पर अब उसे चाहने लगी थी। वह प्यार की चतुर व्याख्या नहीं जानती है पर इतना मान चुकी है कि यह आदमी भरोसेमंद है। इस पर अपना कुछ भी निछावर किया जा सकता है। अपने के लिए दाँव पर चढ़ना रमैनी ने प्रमाणित किया था। रामरती पीछे न रहकर ठीक बगल में खड़ी होना चाहती है।

गोंडा में बिछी शतरंज पर दो औरतें अपने कस बल तौलने लगीं। दाँव बँधावाली मारती और रामरती बचने की कोशिश में कुछ हटती बढ़ती। धीरे-धीरे

रामरती ने अनुभव किया कि हमला भी बचाव का तरीका हो सकता है। वह पहले दिन जेठ पर आजमा चुकी है। अंतर यही है कि तब पुरुष मुकाबले में था, अब नारी है।

“जिज्जी! अब यहाँ कौन बैठा है हमारा? तुम्हारा ही सहारा है। दुनियाँ का मुँह बंद कर सकती हो तुम चाहो तो। सच कह रही हूँ, तुमसे...वो पहले कैसे भी रहे हों, अब नहीं हैं।” रामरती विनय से बँधावाली के सामने झुक गई। बँधावाली जैसी तेज़ औरत भी न भाँप पाई कि सामने वाली का नबना झुकना, धनुष से तीर छूटने अथवा बिल्ली के छलाँग लगाने से पहले जैसा है।

“तुम्हारा कहना सही भी हो तो मानेगा कौन? तुम्हारे पेट में जो जान है सो लोग तुम्हारी बात पाप छिपाने का बहाना मानेंगे। दुनियाँ को तो सबूत देना पड़ेगा। देखो बुरा न लगे—खरी बात कड़वी भी होती है।”

“बुरा काये लगेगा। एक तुम्हीं तो निकलीं जिन्ने हमारी आस औलाद की चिंता करी।”

तुम्हें छोड़ कौन की छाँह पकड़ें? इतना तो हमें भरोसा है कि तिहारा कहा गाँव में पत्थर की लकीर है।”

अपनी प्रशंसा और साख पर बँधावाली का गर्वित होना स्वाभाविक था, बोली, “सो तो दुनियाँ जानें कि हम कभू झूठ न बोलें।”

“ताई से भगवान की किरपा हम पै भई। तुमने वे समरथ बता दिये तो कौन की मजाल की आड़ी लकीर फेरे?” चिरौरी करती रामरती ने बँधावाली के पैर पकड़ किये। बँधावाली पैर सिकोड़ने लगी, “पर बहना हम झूठ बोलें नहीं। मसल मसहूर है कि कानों सुनी झूठी, आँखन देखी सच्ची।”

रामरती ने पैर और भी कस लिए, “तुम हो पाँच बेटियों की महतारी। जेठ जी दूजिहा और चढ़ी उमर के भले रहे हों, तुमने देने में कसर न छोड़ी। तभी न सब जगह सास-सी इज्जत पाती हो। झूठ बोलूँ तो कोढ़िन होऊँ पर कहे बिना नहीं रहा जाता कि जेठ-जी संग साथ निभायें तो अभी भी...।” रामरती शर्माई, “अब वो सब कहना तो मुझे सोभा नहीं देता पर हम अट्टाईस की हैं तो तुम पैंतीस से ऊपर नहीं लगतीं। अब जेठजी से कौन कहे कि अबै से माला न पकरो; मुदा तुमसे कही जाय सकती है कि भलेई लरिका लरकिनी ब्याह जोग है गये पर हमसे अबै ऊ सुंदर हो।” रामरती ने कान तक कमान खींचकर तीर छोड़ दिया।

बँधावाली के मुखमंडल पर कोई बदली-सी घिरी, “तू कहना का चाहती है?”

“का कहूँ तुम भौजाई वे देवर। तुम न हेरोगी तो और को हेरेगा। भौजाई माँ बरोबर होती है। हमारे यहाँ तो देवर के संग पुर्नब्याह भी हो जाता है भौजाई

का। मैं तुम्हें सबूत दे दूँगी।”

“पर कैसे?” बँधावाली को गोरख धंधा समझ न आया।

“नंगा कर देना उन्हें। मैं उनसे कह भी दूँगी और द्वार पै बैठ के चौकीदारी भी करूँगी। चुखरा भी भीतर न घुस पाएगा।”

बँधावाली सन्न रह गई। “का बकती है तें? ऐसी वैसी समझ रखा है मुझे! अपनी-सी समझती है सबको?”

रामरती की आँखों से आँसू चूने लगे। गोड़ों से लिपटी, हिचकियाँ लेती वह कहे जा रही थी।

“जिज्जी! मेरे ऊपर दया करो। मरते मर जाऊँगी पर साँस न दूँगी काऊ को। बस अपने देबर का कलंक पोंछ दो। तुम्हारा हक़ इस घर पै सदा बना रहेगा। बचन से मुकरूँ तो गर्दन रेत देना मेरी।”

बँधावाली को पसीने छूट गए। काँपती-सी वह खड़ी हुई। रामरती ने क्षोभ भरी बँधावाली के ढीले हाथों में छाछ का बासन सँभला दिया।

काँख में नदी

वह गाँव के हिसाब से तीसरा और भौजी की जिंदगी में चौथा पति हुआ। लोग मुँह दबाकर खी-खी करते बतियाते “भैया जा जनी में तो अगिन बसी है, स्यात ही कोऊ होय जो जा लुगाई की मेंड़ बाँध पावे।”

झाँसी वाली भौजी में कुछ ऐसी सिफ़त है कि सामाजिक ज़िबरिया की गाँस अपने आप ढीली पड़ जाती है। वह चलन में रहकर चलन तोड़ती हैं। गाँव की चौगिरही में तो किसी मुसलमान मर्द की भी क़ूवत न रही कि चार बीवियों की गिनती पूरी कर लेता और भौजी द्रौपदी से केवल एक पति पीछे थीं। उसूल उनका भी यही था कि तय समय में पति के प्रति भरपूर निष्ठा रखो। कोई अन्य उनकी देह छू नहीं सकता था। नेम-धरम निबाहने में अच्छी-भली सती सावित्रियों के कान काटती थीं वह।

उनके हर नये पति के साथ गाँव में तूमार बँधता है। आर्त्तनाद के पीछे यह भी रहता है कि हाय! हम न हुए और भौजी बाढ़ के इस मटमैलेपन के बीच इस तरह रास्ता बनाती तैर जाती हैं जैसे चतुर और सक्षम, भारतीय पैनल कोड के ऊपर से निकल जाते हैं।

कोई-न-कोई होता है जो चौतरों, चौपालों पर चल रही मसकियों की सूचना भौजी तक पहुँचा देता है। उनमें अपनी आलोचना सुनने का धीरज भी ग़ज़ब है। यदि यह बात भी कान तक पहुँचे कि अमुक-तमुक के अनुसार भौजी फलाने-ढिकाने के साथ अरहर-ज्वार के खेत में या किसी खंडहर की ओट होते देखी गई है तो भौजी अलाने-फलाने के पौरुष पर ही प्रश्न चिन्ह लगा देतीं, “वो...! वो का कहैगा लाला! बा की मेहरिया तो अबै तक काऊ के संग डिगर चुकी होती। मैंने ही बाकी मेहरिया को महीना दो महीना में एकाध बेर अपने खसम की खटिया पै आयबे की छूट दे राखी है। मैं न होती तो मुकती (बहुत-सी) चिरैयाँ उड़ गई होतीं जा गाँव से। मो से का छिपा है कि कौन की दाल में कहाँ से बघार लागत है।”

इस तरह जवाब देते हुए सबक तक पहुँचाने का उनका अपना ही तरीका रहा है। बड़े-बड़े मुँहफट भी भौजी पर लांछन धरते कतराते हैं पर लोग करें भी क्या...? दो चार बरस में वह ऐसा कुछ कर बैठतीं या संयोग से घट जाता कि मुँह खुल ही पड़ते। यही लो कि चौथे पति वाली वह पहली स्त्री बनीं...गाँव के इतिहास में। कोढ़ में खाज की भाँति हर पति अलग-अलग जाति से। लोगों को खुजाना भी पड़ता और जलन भी झेलनी होती।

भौजी ने जब पहले पहल इस मौज्जा में क़दम रखा तब दिल्ली पर नेहरू जी के बाद शास्त्री जी का राज था। वह अपने से दुगुनी उमरवाले रामसरूप ओझा के बिछुआ पहनकर गाँव में उतरी थीं। उनकी संतान भी रामसरूप ओझा से ही मानी गई। मैंने रामसरूप को भी पहली बार देखा। उन दिनों घर-घर उड़ती चर्चा से ही जाना कि मेरे जन्म से आठ दस साल पहले अपनी पत्नी की गर्दन हँसिये से चीर देने के चलते रामसरूप का गाँव छूटा था। तब इस तरह के हादसे बरसों में कहीं होते थे और उनकी गूँज महीनों रहती थी। आज की तरह नहीं कि सुबह कोई हत्या हुई...दोपहर तक घटना के ब्यौरे मिले और तीसरे पहर तक नई घटना पिछली की चर्चा पर पानी फेर गई। बिस्तर पर पहुँचने तक दिमाग पर इतनी चोटें पड़ती हैं कि सुन्न हो जाता है। फिर कुछ भी घटता रहे...कोई फ़र्क नहीं पड़ता...कोई हादसा अब हादसा नहीं लगता।

तो रामसरूप तीन साल की जेल काटकर चश्मदीद गवाह के अभाव में बरी हो थन्ना छूने गाँव आये और गायब हो गए। बारह बरस जाने कहाँ-कहाँ भटकते, बिरमते वह भौजी के साथ जन्मभूमि लौटे थे। मैं उन दिनों नौ दस का होकर छठी में पढ़ रहा था। भौजी ने ही उनके खंडहर बनते जा रहे मढ़ा का जंग खाया ताला तोड़ा था। रामसरूप की मृत्यु सर्पदंश से हुई। चर्चित हुआ कि ओझा की पूर्व पत्नी श्राद्ध आदि के अभाव और अकाल मृत्यु के कारण पहले चुड़ैल बनकर घर में रही फिर साँपिन बन रहने लगी थी।

मैं रामसरूप ओझा की धरती पर लेटी गिरहें लेती देह का दर्शक रहा हूँ। आसपास गाँवों के सभी नामी वायगीर (ज़हर उतारनेवाले) जुटे थे। ढाँक रखी गई थी। ढाँक बड़े मथना के मुँह पर काँसे की ओंधी थाली बजाने को कहा जाता है। वायगीर पहले मंत्र पढ़ नीम की पत्तियाँ पीड़ित को खिलाते हैं। कड़वा लगे तो ज़हर का असर नहीं और घास-सा मिठिआये तो शरीर में ज़हर फैलना माना जाता। वायगीरों का प्रमुख पीढ़े पर बैठ थाली गोल घुमाते हुए बजाता। वातावरण में घड़े की गुमक में चिपटी काँसे की झनझनाहट लहरों-सी उठती गिरती। बीच-बीच में पीड़ित के मुँह पर मंत्रपूत जल के छींटे मारे जाते हैं। अजब अर्थवाले गीत गाये जाते। पीली लौ फेंकती चिमनियों के प्रकाश में झनन्-अनन् नाचती थाली

और चीखते से बोल वातावरण को डरावना बना रहे थे।

भौजी मुँह पर घूँघट ओढ़े कच्ची खपरैल की भीत से सटी निढाल बैठी थीं। गोद का बच्चा उनके घुटनों पर पड़ा सो गया था। अनुमान लगाना कठिन था कि घूँघट के पीछे भौजी आँसू बहा रही हैं या अपने भविष्य पर सोच रही हैं। कभी कभार घूँघट के बीच से वह नाक ज़रूर छिनक देतीं।

मंत्र-तंत्र विष से पार न पा सके। सारी रात ढाँक सनसनाती रही...गीत गूँजते रहे...मंत्र मारे जाते रहे किंतु सकारे अर्थी सजानी ही पड़ी।

भौजी ने पति के सारे क्रिया-कर्म, लोकाचार मनोयोग से निपटाए। चर्चा रही कि भले ही करी हुई रौंड़ या भगाई हुई कुलच्छिनी आई रही हो...निकली सतवंती। लोग उन्हें ललचाई-श्रद्धा से ताकते। औरतें इज्जत देतीं। रही भरपूर जवानी सो उसे वह कहाँ ले जा दफनातीं? हम बड़ों के मुँह सुनते थे कि देह फाड़कर निकली पड़ रही है।

उनके आसपास सब बड़ा पवित्र-पवित्र-सा चल रहा था कि एक सुबह मैंने पिता को माँ से कहते सुना, “छिनाल ही निकरी ससुरी। पतिबरता का ढोंग रचा-रचाकर गिरी भी तो काछी की जाँघ पर...अरे गू ही खाना था तो किसी भले आदमी का खाती।”

मुझे जागते देख पिता जी कान पर जनेऊ लपेटते नित्यक्रिया को निकल गए...माँ झाड़ू बुहारी में लग गई। मैं छठी से सातवीं कक्षा में पहुँच चुका था इसलिए कुछ-कुछ समझने और कुछ न समझने के दौर में था। समझने के चक्कर में एक बार मेरी कसकर पिटाई हो चुकी थी। हुआ यह कि गाँव-भर में सबसे ज़्यादा ग्रंथ और किताबें, हमारे घर पर ही थीं—रामायण, दोहा चौपाई वाला सबल सिंह चौहान कृत हिंदी महाभारत, सुखसागर, आल्हखंड, कुछ बारामासियाँ, क्रिस्सा तोता मैना, पंचपरमेश्वर, पंचाँग, शीघ्र बोध आदि। ये पुस्तकें पढ़ने मुझे निरंतर प्रोत्साहित किया जाता। किंतु इनसे अलग कुछ किताबें मेरी पहुँच से दूर ऊँचे ताख पर कपड़े में बाँधकर रखी जातीं। मैं इन्हें देखने-पढ़ने को उत्सुक रहता।

एक दिन अवसर पाकर मैंने वह बस्ता उतार लिया। उसमें तीन किताबें निकलीं—श्री मद्भगवत् गीता, बंगाल का काला जादू और असली सचित्र कोकशास्त्र। रहस्य तो उजागर नहीं हो पाया पर मुझे संदेह है कि बड़ी बहन ने मुझे ये ग्रंथ उलटते-पलटते देख लिया होगा और उचित माध्यम से बात पिता के कानों तक पहुँची होगी। फिर तो उनके हाथ पाँव थे और मेरी देह...जिसे सुजाना कहते हैं वह करके रख दिया।

पिताजी की मनोदशा अब मैं समझ सकता हूँ, पुरोहिताई करते हुए पाँ लागन के बदले में आशीर्वाद बाँटते पिता गाँव के निरीहों में गिने जाते। वह अपना क्रोध

केवल घर-भीतर ही प्रकट कर सकते थे। खुद अपनी ही जाति अर्थात् ब्राह्मणों में उन्हें मँगता कहा जाता। स्कूल में भी मुझे ब्राह्मण ठाकुरों के लड़के कभी-कभी यही सम्बोधन देते। घर चूँकि जजमानी से ही चलता था अतः हाथ फैलाये गाय-सी दीनता के साथ रहना पिता की नियति थी। वह घर के बाहर मुझे सदा धिघियाये से दिखते, गाँव में नाई, धोबी, कुम्हार, बरार आदि सात ऐलची होते...जिन्हें शादी-ब्यौहार, तीज-त्यौहार पर भोजन का परोसा मिलता था। हम शायद आठवें ऐलची थे जिन्हें 'भोग' लगा परोसा जाता था। दीनता परिवार का स्थायी भाव बन गया था। पिताजी घर में अकसर वही दुहराते जो पटेल, पटवारी, ठाकुर सरपंच के श्रीमुख से सुनकर आते।

अभी पिता नित्यक्रिया से लौटकर नहीं आ पाए थे कि भौजी को देख माँ चौंकी ज़रूर किंतु उन्हें कुछ जानने की उत्सुकता भी रही होगी सो स्त्रियोचित कूटनीति के साथ पूछा, "आज सकारें कैसी धूम परी बहू?"

भौजी सीधा उत्तर न दे माँ के पैरों पर झुक गई। महिलाओं के बीच अपने से बड़ी की पिंडलियाँ दबाते हुए पैर पड़ने का चलन है। भौजी नियम निभा रही थीं। माँ की तरह मैं भी कुछ जानने को उत्सुक था। पैर पड़ती भौजी 'असीस' सुनने की प्रतीक्षा में थीं। सुहागिनों को अहवातिन रहने का आशीष मिलता है। माँ निश्चय ही असमंजस में रही होगी क्योंकि कल तक विधवा रही भौजी द्वारा सुहाग चुन लिए जाने की सूचना उन्हें मिल चुकी थी।

असीस के लिए फैलायी गई मन की खाली झोली समेटती भौजी ने आने का हेतु बताने की भूमिका बाँधी-आज चौदह है न बुआ?

"हाँ..." माँ का संक्षिप्त उत्तर था।

"सो महादेव की कथा कहवानी है..."

"पंडिज्जी तो आज आन गाँव जाय रहे हैं।" माँ ने टाला।

"सो का भई...! चले जाँय...हमारे देवर करवाय देंगे पूजा। बो बात जे है कि हमने विद्याराम से पक्की कर लई है तो सोची कै पहलें देई देवता कौ छरा-छींटा निकार के ई उनें देहरी चढ़ाऊँ। रामसरूप तिहारे जिजमान हते, विद्याराम ऊ हैं। यों तो चुल्लू गुरु बैठे हैं, पर पुरोहित तो तुमई हौ..."

चुल्लू से हमारे घर की व्यावसायिक प्रतिद्वन्द्विता है। दो प्रतिष्ठित मँगता परिवारों का यह द्वंद्व पीढ़ियों से चला आ रहा है अतः माँ जिजमानी के दो घरों पर प्रतिद्वंद्वी का अधिकार हो जाने की चिंता में पड़ गयीं। विद्याराम का परिवार बड़ा भी है...सालाना सौ दो सौ नकद दक्षिणा और मन दो मन चून-चाँवर दान-पुन करने वाला। माँ कुछ सोचते हुए कहने लगीं—बे हाथ धोयबे गए हैं...बे ई कह सकत हैं। "वे अर्थात् मेरे पिता जी।"

"ठीक है, आप आन देउ पंडिज्जी को...मैं लौट के आबति हों", कह मेरे गालों पर हाथ फेर देवर-भाभी का रागात्मक सम्बन्ध प्रदर्शित कर भौजी लौट गई।

पिताजी के लौटने पर माँ उनसे खुसर-पुसर कर ही रही थीं कि भौजी आ पहुँचीं। उनके हाथ में आँचल से ढँकी परात थी। परात ज़मीन पर रख उन्होंने पल्लू हाथ में ले पिता जी के पैर छुए। परात में प्रचुर आटा, चावल की पोटरी, गुड़ का ढेला, दाल, नमक, खड़ी लाल मिर्चें सजी थीं। आटे के ऊपर पाँच रुपए का खरखरा नोट खुरसा था।

भौजी की श्रद्धा का दबाव कुछ ऐसा पड़ा कि पिता जी ने हाँ नहीं की तो ना भी न कह सके। कथा-पूजा की दक्षिणा में मैंने भी सवा पाँच रुपए पाये जब कि उन दिनों सवा की रेट थी। इस सवा में भी चवन्नी की जगह अकसर इकन्नी दुअन्नी लगा दी जाती।

कुछ दिनों या महीनों की बतकही के बाद गाँव और भौजी का जीवन फिर ढर्रे पर आ गया। बिद्या दादा की उम्र भौजी से आठ दसेक साल कम थी किंतु भौजी की भैंस की बढौलत साल-भर में ही उनकी चाम चिकनी बन पहलवानी हो आई थी। भौजी के हिस्से स्वर्गीय पति की बारह बीघा काशत आयी थी। विद्या दादा का पारिवारिक हिस्सा उन्हीं के परिवार में छोड़ दिया गया था इस उदारता के कारण भौजी का सिक्का उस परिवार में चलने लगा था गो कि उन्होंने 'नाति दूरे नाति तीरे' की नीति अपना रखी थी।

मिडिल पास होने के बाद मैं तहसीली विद्यालय में भरती हुआ एवं भौजी गर्भवती। कार्तिक महीने में स्त्रियाँ पड़वा से पूनों तक महीने-भर का स्नान व्रत रखती हैं। भौजी अपने मुहल्ले की अगुआ बनीं। औरतों के टोल रात के पिछले पहर में कीर्तन गाते नदी की ओर निकल पड़ते। उधर ही फ़रागत वहीं स्नान। भौजी का गेंहुआ रंग, गठीली देह कइयों को अपनी छाती मसोसने को मजबूर करती। खेत-खलिहान, गेंउड़ा घूरे तक भौजी बिछुआ झनकारती घूमतीं। उनके हाथ सदा व्यस्त रहते। पति के प्रति एकनिष्ठता उनका उसूल रहा। स्नान से लौटती भौजी को पटेल के भाई रंजीत ने चुहल करते हुए छेड़ा, "झाँसी बारी! अँधेरे में पाँव ओंध नीच न है जाय...पेट टपकि जायगौ।"

स्नान की पवित्रता में लिपटीं, महिलाओं के झुंड में चलती भौजी का यह सार्वजनिक अपमान था...कोख पर अश्लील छींटाकशी थी। भौजी झेल न सकीं—धुँधलके के बावजूद घूँघट नाक पर लाकर कह दिया 'गिर कैसे जायगौ जेठ जी! मरद कौ बीज है और चोरी कौ नइयाँ।"

टोल की औरतें खिलखिला पड़ी थीं। पटेल परिवार चलते-पुर्जा परिवार...लक्ष्मी-लाठी से समृद्ध। इस तरह का उत्तर देने की हिम्मत गाँव में किसी की न

होती। अफ़वाह थी कि इन सज्जन ने अपनी विधवा बहू को फाँस रखा है...बहू के पेट की सफ़ाई भी करवा चुके हैं।

जवाब से सनाका खाये रंजीत घूँसा तान लपके, “साली कुतिया! भले आदमियों के मुँह लगती है...में लाठी डाल के मुँह से निकाल दूँगा।”

भुन्सारे का बख़्त...गाँव में जगार हो ही जाती है। लोग-बाग़ खाँसते-खँखारते घरों से निकलने लगे थे। ब्रती स्त्रियों का समूह कुछ अनुचित घटने की आशंका से सिहर तितर-बितर होने लगा। रंजीत फनफनाते हुए आगे बढ़े कि भौजी के हाथ में कटार चमका। किसी को भान भी न था कि यह औरत राह की सुरक्षा के लिए हथियार भी रखती है, “असल बाप का होय तो हाथ लगाय के देख! आँड़ (अंडकोष) काट केँ घूरे पै न फैंक दये तो झाँसी बारी नहीं सूअरिया समझियो!”

मिसमिसाता रंजीत थमकर रह गया। ऐसी औरत का क्या भरोसा?...कुछ भी कर डाले। लाज-लिहाज़ घोलकर पी चुकी है। वह उल्टे पाँव मुड़ा...घर से बंदूक उठाने...बड़बड़ाते हुए, “हरामजादी! अभी उतारता हूँ तेरी...में गोली। अभी देख ठाकुरों से उलझने का तमासा।”

चारों ओर से लोग-बाग़ दौड़-दौड़कर एकत्र हो उठे। उधर घरवाले गालियाँ बकते रंजीत से लटके थे, इधर भौजी कटार ताने खड़ी थी। विद्या दादा लुहाँगी लिए आ पहुँचा था, “समर मरन पुनि सुरसरि तीरा” की मुद्रा में। कुछ उसे भी थाम रहे थे। पहाड़ी टेकरी के उस मोड़ पर आधा गाँव जमा हो गया। बिद्या का परिवार रंजीत से जाति में हेठा ज़रूर था किंतु लाठियों की गिनती उधर भी कम नहीं थी। लाशों की गिनती कम ज़्यादा हो सकती थी पर गिरती दोनों ओर से। बातों-बातों बढ़ी रार को बीच के समझदारों ने कुछ इस तरह टाला कि, “रंजीत इज्जतदार हैं और झाँसी बारी तो है ही जानी बूझी...रंजीत को लुगाइयों के मुँह नहीं लगना चाहिए था।”

इस घटना से हमारा घर पुनः धर्मसंकट में आ गया। कार्तिक सुदी नवमी से स्नान करने वालियों का उपवास आरंभ होता है। इस इच्छानवमी को इच्छा हो सो पकवान खाओ फिर स्नान की समाप्ति पर तुलसी पूजा के पश्चात ही अन्न से भेंट होती है। इच्छा नवमी को आँवले के वृक्ष की परिक्रमा कर उसी के नीचे ब्राह्मण को भोजन करा पकवान प्रसाद पाया जाता है। भौजी के यहाँ निमंत्रण तय सा था। पटेल परिवार के भय से भौजी के अनुष्ठान में शामिल होना उनकी पक्षधरता मानी जाती। यह ठीक पोखर में बसकर मगर से शत्रुता जैसा उपक्रम था। न उगलते बन रहा था न निगलते। साँड़ों की लड़ाई में बारे के झुरकन की संभावना सामने खड़ी थी। सोच में डूबे माता-पिता के गले में कौर अटक जाता।

पिता पटेल के द्वार गए। निश्चय ही विप्रजन्म दैन्य के साथ अपनी विवशता बताई होगी और जजमानी में आने जाने की छूट के लिए झोली फैलायी होगी। बिद्या दादा सायकिल लेकर मुझे लेने तहसील आए थे...वहीं से उन्होंने मेरे लिए धारीदार पट्टे का पट्टे का पाजामा व क्रमीज़ के लिए पोपलीन का कपड़ा ख़रीदा था...भौजी ने भक्तिभाव से अनुष्ठान पूरा कर लिया।

दो वर्ष में ही भौजी के भाग्य ने फिर करवट बदली कि विद्या दादा एक कन्या उनकी गोद में डालने के बाद ग्रहस्थी से बिरत हो, गले में कंठी पहन, गेरुए वस्त्र धारण कर बाबा हो घर त्याग गए। जाने कैसे घटित हो गया यह? सुंदर-सी नारी उनके घर में बस रही थी...संपत्ति आवश्यकता से अधिक ही रही। वह सब करतल था जिसकी गिनती सातों सुख में होती है फिर भी वह मूँड मुड़ाय संन्यासी हो गए। जाने क्यों सुख में कोई शाप दुबका बैठा रहता है और धन आदमी को सदैव खुशी नहीं दे पाता। शायद आदमी सुख से भी आगे आनंद जैसा कुछ चाहता है...या उससे भी आगे कुछ...आगे भले कुछ न होता हो पर होने का भ्रम तो होता ही है...

भौजी अब न विधवा रहीं न सधवा। हाथ बँटाने वाले के अभाव में खेती गिरस्ती के साथ संतान की साज सम्हार। दिन खटते बीतता...रात कलपते। दो बरस फिर भी उन्होंने धैर्य से काटे कि शायद गया हुआ लौटे। न लौटा वह जोगी। झाँसी बारी क्या करे? घर देखो तो बाहर उजार और बाहर सँभालो तो घर फ़ज़ीहत में। भौजी ने हिम्मत तो न हारी पर उनके चेहरे से रौनक और दर्प साथ छोड़ने लगा।

मैं हर आठवें, पंद्रहवें दिन घर आता तो दो तीन घंटे ज़रूर भौजी के यहाँ बिताता। भौजी स्नेह में डूब कभी पकौड़ा पापड़ तलतीं, कभी खीर पका कर खिलातीं। मेरी मसँ भीगने लगी थीं और ईश्वर मुझे क्षमा करें, मैं कभी-कभार मन ही मन भौजी से अपनी जोड़ी मिलाने लगता था। इससे आगे बढ़ने की न मुझमें हिम्मत थी न उधर से कोई संकेत। फिर भी हमारे परिवार का भला चाहने वाले किसी ने माँ-बाप को सतर्कता बरतने की सलाह दे ही डाली। पिता तो पहले से ही मेरे क्रदमों पर आँख रखे हुए थे। अपने ब्राह्मणत्व और दैन्य को भुनाने के लिए उनके पास एक ही उपकरण था—यौन शुचिता। कवच था यह उनका...उन्होंने मेरे भौजी के यहाँ उठने-बैठने की हरकत बंद करने की घोषणा कर दी।

चुगलखोर की चाल सफल हो ही गई होती यदि माँ बीच में न कूद पड़तीं, “सुनौ! झाँसी बारी जो कलू करैगी, डंका की चोट करैगी। चोरी से नहीं करि सकत बो और जो तिहारे कान भरवे बारे हैं ना!...दूध के धोये हैं का? ...ठीक है विगैरैगो तो हमाओ मोंड़ा...इनें का परी है?” पिता को सम्बोधित माँ ने दो एक कान भरने वालों को इसी तर्ज पर फटकारा था।

कहा जाता है कि कुँआरी के भाग से सुहागन मरती है। भौजी के पड़ौसी रमदिला तेली की पत्नी चल बसी... एक दुधमुँही बच्ची को छोड़कर। तेरहवीं तक उसका घर नाते रिश्तेदारों, बहनों फूफियों से भरा रहा पर बच्ची रात दिन चिंचियाती। रमदिला हलकान था। बच्ची को कंधे से चिपकाये फिरता फिर भी चिंचियाताना बंद न होता। भौजी भी उसका रोना सुनती। एक दिन उन्होंने बच्ची को अपनी छाती से लगा लिया। बच्ची लगी सो ऐसी लगी कि भौजी की होकर रह गई। गाँव में कानाफूसियाँ होने लगीं कि अब झाँसी बारी रमदिला को फेंटती हैं। रमदिला भी उनके आगे पीछे बिछा रहता। खेती का काम उसने सँभाल ही लिया था...

लोकापवाद जब ज्यादा ही बढ़ गया तो मैंने स्वयं भौजी से कहा कि, “लोगों का मुँह बंद करने के लिए रमदिला को कर क्यों नहीं लेतीं? यूँ भी वह तुम्हारे खेत-खलिहान सँभालता है और तुम उसका घर।”

सूप पर कुछ फटकती भौजी मुस्कराई थीं, “लल्लू! तुम नहीं समझोगे। औरत धरती होती है, मरद आसमान। एक में छाने का गुन है तो एक में बिछ जाने का। रमदिले में आसमान की तासीर नहीं है सो नाता निभ न पावेंगे। रही बिनकी मोँड़ी सो मेरी कोख से ई दो है जातीं तौ का पालती नहीं? जा मे करूँ पै ऐसा थोरे ई है।”

उस दिन मेरी भौजी के चरन छूने की इच्छा हुई थी। मैं इंटर पास कर चुका था। कॉलेज जाने की जुगत न थी। बड़ी बहन की शादी में घर पूरी तरह निचुड़ चुका था... क़र्जा भी हुआ। पिता जी कंधे पर खुज्जी टाँग हफ्तों के लिए जजमानी पर निकल जाते। उनका पेट औरों के घर भरता और घर के लिए खुज्जी भरकर लाते। खर्चा दरकाने लायक पाँच-पच्चीस रुपए दक्षिणा भी मिल जाती।

एक आसरा मंदिर पेटे चली आ रही पाँच बीघा ज़मीन का था किंतु सरकार ने उसे पुजारियों से छीन बोली पर चढ़ाने का कानून बना दिया। गाँव के कई लोगों की निगाह इस ज़मीन पर गड़ी थी... पटवारी, तहसीलदार से साँठ-गाँठ होने लगी थी। हममें ऊँची तो क्या नीची बोली लगाने की भी क़वत न बची थी। प्रसिद्ध था कि राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के चलते मुख्यमंत्री को ब्राह्मण जाति से चिढ़ है। ब्राह्मणों का आर्थिक आधार समाप्त करने के लिए ही उन्होंने यह कानून बनाया है। उनके स्वयं के पास नामी-बेनामी हज़ारों एकड़ ज़मीन हैं किंतु वह विरासत के हक़वाली थी और हमारी दानखाते के चुग्गावाली... औकाफ़ की।

आषाढ़ के आखिरी दिन... बादलों के गुच्छे आकाश में टहलने लगे थे। घर में न जुताई के लिए पैसा था न बावनी के लिए बीज। ऊपर से तलवार लटकी हुई कि सरकार जाने कब बोली लगवा दे। ऐसे में पढ़ाई जारी रखने का सवाल

ही पैदा नहीं होता था। मन में एक अजीब बेचैनी भरी रहती...

छोटी-मोटी नौकरियों के दरवाज़े बंद... सरकार लगे हुआँ की भी छँटनी में जुटी थी। लगता था कि केवल कलेक्टरों और मिनिस्ट्रों के पद ही बचेंगे।

मेरा जवान होना भी घर का बोझ बढ़ा रहा था। पीले हाथ होने की प्रतीक्षा में एक बहन और बैठी थी। घर में अबोला छाया रहता। रातों को, अकेले में कई बार आत्महत्या का विचार उठता। कल्पना में लाश के पास रोते बिलखते, सिर पटकते माँ, बाप-बहिन दिखते तो घबराकर मन आत्महत्या की ओर से मोड़ लेता।

इन दिनों पिता तेज़ी से बूढ़े होते जा रहे थे फिर भी उँगलियों पर ज़माने भर के ग्रह-नक्षत्र गिनते, जेब में पंचांग खोंसे, कंधे की खुज्जी भरने के लिए गाँव-गाँव भटकते फिरते। मैं समय काटने भौजी की ओर निकल जाता।

मुझे चाय का कप थमाती भौजी ने पूछा, “लल्लू! इस्कूल खुल गए, तुम नई जाय रये?” भौजी ने जैसे मेरे घाव में नाखून गड़ा दिया हो। क्या कहता? बस फल्लू आँसू टपकाने लगा।

खड़ी हुई भौजी ने मेरा सिर बाँहों में समेट लिया, “मरद होयकें रोवत हौ? बुरौ टैम तो भगवान पै ऊ आवत है। हिम्मत से ई पार लगौ जात है। तुमई जुआ डार बैठोगे तो बूढ़े मइयो बाप का करेंगे? चिंता न करौ! भगवान कछू न कूछ रास्ता निकारेंगे।”

भौजी अपने मढ़ा में गई और लौटकर सौ-सौ के पाँच नोट मेरे हाथ पर धर दिये, “सौ पचास की और ज़रूरत परै तो कछू करोंगी मैं। तुम टूशन-फूशन करके खर्चा निकारियौ अपनों। कछू न मिलै तो मजूरी तो अपने हाथ है। पचास रुपैया की रेट है बजार में। उहाँ को देख रऔ कै पंडित कौ लरिका बेलदारी कर रऔ है।” आँखें भौजी की भी भर आयी होंगी क्योंकि उनका गला रूँघ रहा था। मुझमें तो उनकी ओर देखने की ताब ही न थी।

तब भविष्य के अँधेरे की ओर दौड़ते हुए मैं बी.एस.सी. अंतिम वर्ष की तैयारियों में जुटा था कि भौजी की खबर आई, चौदस को चले आवें। महादेव जी पै पूजा करवाउनी है।

तो क्या भौजी ने फिर कोई चुन लिया है? सोचने लगा कौन हो सकता है...? किस जाति का होगा?

पर भौजी के तई जाति अप्रासंगिक है और मुझे पहुँचना ही है।

बकरबटा

दो बरस का अकाल झेलते जंडैल को गए महीने से थोड़ी राहत थी। जंडैल यानी परिवार के शादी ब्याह की चिट्ठियों, जिनमें दुधमुहे बच्चों गुल्लू, कल्लू, भूरा, टल्लू, तक के नाम छपते, उनके ऊपर बड़ों के बीच एक नाम टँगा रहता—जंडैल सिंह। नाम के सिर पर सिंह का सींग इधर उस शक्ति का प्रतीक माना जाता है जिससे बचे रहने में ही कुशल है।

रोज़मर्रा की ज़िंदगी में ऐसे अनेक सूचकों से वास्ता पड़ता ही पड़ता है जैसे—आगे ख़तरनाक मोड़ है। बिजली के खंभों पर क्रास बनाती हड्डियों के ऊपर खोपड़ी का कंकाल ख़बरदार करता है। कोठियों, हवेलियों के आगे तख़्तियाँ जड़ी रहती हैं—कुत्तों से सावधान, मंत्री, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री आवास मार्ग आदि। ये सूचनाएँ कटखनी नैतिकता के दयाभाव अंतर्गत आती हैं कि निर्धारित सीमा लाँघने पर 'कुछ भी हो सकता है।' फिर भी न चेतो तो विधि का लिलार-लिखा कौन टाल सकता है।

लोकतंत्र के नाते चलित ख़तरों से भी आगाह किया जाता है जैसे हर तीसरे वाहन पर लिखा दिखेगा—अध्यक्ष, विधायक, एस.पी., कलेक्टर, पुलिस, अमुक या वमुक। पर बात अपने जंडैल की है जिसका सिंह जैसे मांसखोर से दूर-दूर तक सम्बन्ध नहीं है। लोग उसे मुँह पर जंडैला जैसा चालू सम्बोधन दे बुलाते हैं और उसकी मुँछ तक नहीं फरकती। यूँ आदमी के संसार से जंडैल का सम्पर्क न्यूनतम है, फिर भी चूँकि वह शारीरिक संरचना के तहत आदमी है अतः उसे परंपरानुसार नाम भी दिया गया। नाम से किसी वस्तु या व्यक्ति का रूप बनता ही है। वैसे शब्दकोष में जंडैल का कोई मानी नहीं होता। यह जनरल या जनरैल के लोक संसर्ग से उपजा संकर शब्द है।

जंडैल अपने पिता की आठवीं संतान है। इस क्रम साम्य से वह कृष्ण हो सकता था, कुछ कुछ है भी। कृष्ण गोचारक थे, वह बकर चारक है। कृष्ण की तान पर गोपिकाएँ गृह कारज त्याग खिंची चली आती थीं, जंडैल की सीटी पर

बकरियाँ झुंड बन जाती हैं। कृष्ण ने नाग नाथा था—बैल, पाड़े नाथने में जंडैल का जवाब नहीं। उन्होंने गोवर्धन उठाया था—वह घायल बीमार या कभी-कभी प्यार में तंदुरुस्त बकरी तक को उठाये-उठाये घूम लेता है। बल के मामले में दसियों कोस तक उसकी बराबरी नहीं, हाँ, बुद्धि या चतुराई का मूल्य नहीं जानता वह। अच्छे-अच्छे को रोगदने की सामर्थ्य के बावजूद बातचीत में बच्चों से भी हारता है। यह ग्रह जातकों का प्रभाव भी हो सकता है, क्योंकि रिटायर्ड मास्साब मुद्गल जी को ठीक-ठीक याद है कि जंडैल उसी रात जनमा था जब ताशक्रंद से लाल बहादुर शास्त्री के मरने की ख़बर आई थी।

कोख क्रम में आठवाँ और सात भाइयों के क्रम में पाँचवाँ स्थान प्राप्त जंडैल के घर को सत्तों का घर कहा जाता है। सत्तों का परिवार गाँव के हिसाब से बाहुबली और ख़ूब संपन्न हैं। सींग लगाकर पिछड़ा होने से आरक्षण वाली प्रधानी भी सत्तों वाले परिवार के पास ही है, वैसे जंडैल का अपना वोट अपने भाई को नहीं मिला था। कहा जाता है कि वह विपक्षी के नाम पर सील ठोंक आया था, क्योंकि उसका चुनाव चिन्ह बकरी था।

गिनती में शामिल होने पर भी घर में जंडैल की कोई रूझबूझ नहीं—वोट प्रकरण ने उसे और भी कोने की ओर सरका दिया। यद्यपि उसके पाले पोसे बकरे-बकरियाँ हर साल बिकते। दूध-घी की भी आमदनी उतनी ही रहती, किंतु यह सब घर के कर्ताधर्ताओं की जेब में समाता रहता। बहुत चेताने पर जंडैल थोड़ा-सा समझा...अपने हक़ के लिए लड़ा-झगड़ा तो कुछ सालों से उसकी कमाई की रायल्टी मिलने लगी थी। वह दुधारू पशु की भाँति झेला जाने लगा था। इसलिए भी कि फौजदारी आदि अवसरों पर उसे किसी भी तरह झोंका जा सकता है।

जंडैल का विवाह हो सकता था। धनी-मानी परिवार में तो पागलों, जनखों तक के विवाह होते हैं, पर जंडैल का नहीं हुआ। जंडैल ने कभी कोई ऐसा लक्षण प्रकट नहीं किया कि विवाह करना ज़रूरी माना जाता। भौजाइयों, बहुओं में से ही कोई रात को महेरी की हँडिया खदकाकर बीस-बाईस रोटियाँ थोप देती। पतीली-भर कच्ची-पक्की सब्जी, प्याज के चार छह गट्टों, मुट्ठी-भर मिर्चों के साथ संपूर्ण सामग्री जंडैल के आवास अर्थात् ख़िरक में पहुँचा दी जाती। बकरियों के लिए नमक की नांद वहाँ होती ही है। जंडैल आधे से अधिक सामान रात के समय पेट में पटक, शेष दिन के लिए सहेज देता। सुबह दुहाऊ के बाद जिस तसले से वह रात-भर के निकले गेंड़ी-गोबर को घूरे पर फेंकता, उसी को पानी से खँगाल तसले में महेरी की हँडिया औँधा लेता और नांद से मुट्ठी-भर नमक ले मट्ठा कुरोकर घपनघोर करते हुए मुँह से चर्च-चर्च पी, भरे पेट पशु की डकार लेते हुए ख़िरक की टटिया खोल, अपने फौज-फाँट के साथ दिन-भर के लिए जंगल में धँस जाता।

मानुष जाये सम्पर्क की कमी प्रकृति पूरी करती—वह बकरा बकरियों से बतियाता, पेड़ों को गले भेंटता, फूलों से खेलता, हवा से खुसरपुसर करता। पंक्षियों की नक़ल करता। कहा जाता है कि “समय कचरिया कुसमय बेर”, सो अकाल में बेर ख़ूब फले थे। न बकर समाज भूखा रहता न जंडैल। यह मौसम पौष तक एक महीने और चलने वाला था, इसके पश्चात् बेरियों के बेर एक माह काट देंगे। चैत लगते ही बबूलों में बंगली लटकने उठेंगीं। बस दिक्कत पानी की है। भोजन बिना तो कुछ चल भी सकता है, पानी बिना सब सूना है। नदी-पोखर पपड़ाये हुए हैं, कुएँ दाँत निपोर रहे हैं और हँडपंप दमा की मरीज़ से हाँफते हुए, आदमी की पूर नहीं पार पाते तो जंडैल के रेवड़ की गुंजायश ही कहाँ?

आवश्यकता आविष्कार की जननी तो है ही, ख़तरे उठाने का साहस भी देती है और जंडैल ने भैरों की खोह के बीच आँसू की तरह रिसते और कुण्ड में इकट्ठा होते मैले, हरे सड़ते पानी का ठीया खोज ही लिया। इस ठीये पर वन्य पशुओं और डकैतों का अधिकार रहता आया है। यहाँ पहुँचने से पुलिस भी कतराती है और आदमी भी। खोह में तेंदुए, चीते चक्कर लगाते और वानर-भालू पेड़ों पर झूलते। पर पानी बिना पूरे परिवार के प्राण संकट में थे, सो गाहे-बगाहे कुनबे में से किसी-न-किसी की बलि चढ़ाते हुए भी जंडैल भैरों की खोह जाता था। लंबी धौकरी में फँसी कुल्हाड़ी उसका एक मात्र हथियार थी। दिन-भर जाते-आते कट जाता। भूख-प्यास के अतिरिक्त जंडैल की कोई ज़रूरत सामने न आती। हाँ, पिल्लेदार रुई की चीकट रज़ाई जब जाड़ा न रोक पाती तो वह रेवड़ से कोई सुधर-सी चिकनी बकरी उठाकर टाँगों के बीच दबा छाती से चपेट लेता।

कई लोग दबी हँसी के साथ कहते भी थे कि कभी-कभी रात-बिरात जंडैल के खिरक से बकरी की अजीब सी मिमियाहट और जंडैला की हुंकारों में बकरे की बो-बो जैसी आवाज़ सुनाई पड़ती है, किंतु ‘बो-बो’ की आवाज़ तो वह अक्सर बैल या पाड़े को बधिया करने के लिए क़ाबू करते समय भी निकाल बैठता। ऐसे क्षणों में ठीक बकरे की तरह उसकी नाक भी बहने लगती थी, अतः अश्लील निंदा करनेवालों को प्रधान के राजनैतिक विरोधियों में गिनते हुए कभी ध्यान में नहीं लिया गया।

गाँववालों ने जंडैल को बस माँ की मौत पर आँसू बहाते देखा था—बाक़ी कोई दुख उसे नहीं व्यापा। कम-से-कम ज़ाहिर तो न किया उसने। बस बकरे-बकरी की बिक्री के बाद वह कुछ उदास ज़रूर दिखता।

बिक्री से प्राप्त रॉयल्टी के रूपए वह मुद्गल मास्साब याने पंडिज्जी के पास जमा कर देता। भाइयों-भावजों ने अनेक बार उसे समझाया कि देख! ये बाह्यन बड़ी हरामी चीज़ होते हैं...रीछ की तरह तलवे चाट चाटकर लोहू पी प्राण खींच

लेते हैं। ये बाम्हन तेरा रुपया पचा जाएगा। ये न भी पचाए तो उसकी संतान हड़प जाएगी। अरे बुढ़ा तुझसे पहले मरेगा ही। कोई लिखा-पढ़ी तक नहीं है। किसी को क्या पता कि तेरा कितना पैसा है? भाइयों से हिसाब तू उस पंडित के ज़रिए करवाता है...अपने हिस्से का धेला नहीं छोड़ता, पर जंडैल किसी की न सुनता। उसे जाने क्यों विश्वास था कि पंडिज्जी मांस नहीं खाते तो उसका रुपया भी नहीं खाएँगे।

मुद्गल मास्साब भी कम दबाव में नहीं थे। सारा गाँव जानता है कि जंडैल का रुपया उनके पास जमा होता है। उसका परिवार लठैतों का है...राजनीति की पहुँच भी है उसके पास। पिता की मृत्यु के बाद नामान्तरण में प्रधान सात की जगह छह भाइयों का नाम ही चढ़ाना चाहता था...पर चढ़ें सातों के। इसमें भी वह मास्टर की बदमाशी मानता है। इसलिए मुद्गल मास्टर ने जंडैल के लिए बैंक की किताब बनवा दी थी ताकि कोई उन्हें बेईमान न ठहरा सके और प्रधान हज़ारों को लाखों में बदल जोर-जबरदस्ती वसूली पर न उतर आए। हालत यह है कि रीछ को उन्होंने बहता कंबल जान पकड़ा था...अब वह कंबल उन्हें नहीं छोड़ रहा है।

जंडैल यूँ अपने पैसे का पूरा हिसाब रखना चाहता है, पर मुश्किल यह है कि उसे बीस तक ही गिनना आता है जैसे कि चार बीसी बकरियाँ, एक बीस बकरे। बीस, बीसी पर उनकी गिनती समाप्त हो जाती है। इसे ज़्यादा वह या तो राजा के पास मानता है या देवताओं के पास। मुद्गल मास्टर ने जब बताया कि उसकी किताब में बीस हज़ार से अधिक रुपया जमा है तो अपनी घनी भौहों और झबरी दाढ़ी-मूँछ के बीच दाँत निकाल उसने पूछा, “कितनी बीसी?”

जंडैल के प्रधान दददा ने जंडैल की वारिसी अपने बेटे के नाम चढ़वा ली है। बेईमानी की बू सँघ भाइयों के बीच ऐंठमेंट बनी है, किंतु घर की इज़्जत बनाए रखने के नाम पर झगड़ा अभी सिर्फ महिलाओं तक रुका हुआ है। जंडैल को घर की खींचतान से कोई मतलब नहीं...बस उसका खिरक सलामत रहे।

पर होनी ने किसे छोड़ा है? अगहन उतरते, उतरते वह भी घिर गया विपत्ति में और विपत्ति अकेली नहीं आती। आरंभ जाने चीते से हुआ या तेंदुआ से...हो सकता है कि भेड़िये भी रेवड़ की टोह पा गए हों। रेवड़ की गिनती रोज़ रोज़ घटने लगी। जंडैल परेशान था। चौकस रहता, पर अकेला किस-किस से झुण्ड की रखवाली कर पाता। कुदरत की मार सहने विवश था वह। विडंबना यह बनी कि जंडैल को खसोटने में आदमी भी शामिल हो चुका था। घाटी के शासक डकैतों ने झुंड से बकरे उठाने शुरू कर दिए। जंडैल गोली बंदूक के आगे असहाय था। डाकू दलों की तलाश में पुलिस की आवाज़ाही बढ़ी तो प्रधानी के रसूख में बकरे

कम होने लगे। चिंता और क्रोध के इन्हीं दिनों में जब रीछ ने झुण्ड से एक शिशु उठा लिया तो जंडैल कहाँ तक सहता? भिड़ गया रीछ से। देखनेवाले कुछ और भी थे पर दूर से देखते रहे। क्या पता रीछ जंडैल को छोड़ उन्हीं पर झपट पड़े। जंडैल का क्या...आगे नाथ न पीछे पगहा। हल्ला भी बड़ी देर से किया। तब तक रीछ शिशु बकरे का पेट चीर चुका था और जंडैल को जख्मी कर चुका था। जंडैल को हिम्मत और लोगों के हल्ले से घबराकर रीछ भाग तो गया पर जंडैल की खटिया पकड़नी पड़ी। उपचार भी आदिम हुआ। उबली हुई लेंडियों का घोल घावों पर लेप दिया जाता।

जंडैल झिलंगी खटिया पर देह तोड़ता-छटपटाता और कराहता कभी कभी जोर से डकराता। रेवड़ जैसे लावारिस हो गया...उसमें से कुछ मुण्ड बिके, कुछ मरे, कुछ कटे। यह सब देख-देख जंडैल उसासैं भरता...आँसू टपकाता। मुद्गल मास्साब से गिनती करवा बीसी के समीकरण में अपने हिसाब की जोड़ बाक्री करता।

दुनिया अपने ढंग से चल रही थी जैसे अकाल की भूख प्यास से आदमी के बच्चे मरने लगे।...बूढ़ों की खुराक में कटौती हो गई। यूँ अधेड़ों और जवानों को भी पूरा कहाँ नसीब?...लोग हफ्तों से बेर खाकर जिंदगी की डोर खींचने में जुटे थे। ...जुगत का खेल चल रहा था तो जंडैल को राहत देने की कौन सोचता? राहत दे सकने वालों से कौन पूछता कि राहत क्यों न मिली? मिली तो यहाँ क्यों न आई...गई कहाँ?...कैसे गई?

उत्तर भी कौन देता?...वहाँ तो राजधानी से राजधानी तक दौड़ लगी है। राम जाने मास्साब का हिसाब सही है या गलत कि उनकी एक दौड़ का खर्च इतना है कि पंद्रह गाँव की प्यास बुझाई जा सकती है पर उड़ते हुआँ को मास्साब का हिसाब भी कौन कहे?...और वे भी क्यों सुनें। एक जंडैल सुनता है मास्साबकी...समझने की कोशिश भी करता है। यदि वह जीवित बच गया तो शायद रेवड़ को भी समझाने की कोशिश करे।

इकाई, दहाई...

कुछ दिनों से रामलखन के रंग ढंग बदले-बदले लगने लगे थे। खोया-खोया सा तो रहता ही, आदत के अनुसार सुबह-सुबह उँगलियों के बीच लोटा फँसाकर दिसा-मैदान को निकलता तो बड़े बूढ़े बगल से गुज़र जाते और उसे रामजुहार की होश न रहती। कम उम्र वाले सुबह का अभिवादन करते तो अनसुनी हो जाती। ऐसे लच्छन किसी आदमी में तब प्रकट होते हैं जब किसी का कर्ज़ चुकाना हो और बन्दोबस्त न हो पाए या बणज—ब्यौपार में तगड़ा घाटा उठाना पड़े या मौरूसी ज़मीन पर कोई और क़ब्ज़ा कर खसरा के बारह नंबर के खाते में अपना नाम बढ़वा ले या डकैतों की चिट्ठी आ जाये कि इतने हज़ार या लाख इतने दिन में वहाँ पहुँचना चाहिए नहीं तो...! इसके अलावा कुछ ही मुद्दे और होते जैसे थानेदार क़त्ल के केस में फँसा दे...मरी पड़ जाए या आदमी इश्क कर बैठे।

रामलखन के साथ कोई और हादसा तो फ़िलहाल संभव न था, हाँ अंतिम यानी इश्क-विश्क वाली संभावना जो जाने कहाँ, कब, कैसे घटित हो जाए? वाली के अवसर भी काफ़ी धूमिल थे क्योंकि बाप के मरने पर बेटा बिगड़ता है तो पंद्रह से पच्चीस के बीच बिगड़ लेता है। रामलखन ने यह कालखंड तो लायक बेटे की तरह गुज़ारा ही, अब तक भी उसकी पत्नी को इस तरह की कोई शिकायत न थी। वह खेत-खलिहान से लेकर घर और कोठरी तक के समस्त दायित्व किसी अच्छे प्रशासनिक अधिकारी की तरह बखूबी नहीं तो नियमानुसार निभाता चला आया है किंतु अब ये कि कुएँ पर नहाने जाता तो ढीली-ढाली गाँठ के साथ बाल्टी कुएँ में सरका देता। भरी भराई दो तीन बाल्टियाँ अब तक कुएँ के हवाले हो चुकी थीं। आते या लौटते समय कभी रस्सी घाट पर छूटती या रस्सी कंधे पर झूलती होती और अँगोछा पड़ा रह जाता। कभी चड़्डी कभी बनियान कभी साबुन गरज कि कुछ-न-कुछ छूटने लगा।

स्वाभाविक रूप से इन हरकतों पर सबसे पहले रामलखन की पत्नी का ध्यान गया। घर में स्पष्ट-सा और मान्य श्रम विभाजन था कि घर-देहरी पत्नी

सँभाले और खेत-खलिहान, पंचायत, थाना, कचहरी, कथा-भागवत, होली-हुड़दंग, दंगा-फसाद पति की देखरेख में होता चले। सब ठीक-ठाक था। इश्क की गुंजायशें कम बची थीं। शादी के आठ बरस में तीन संतानें उत्पन्न हो चुकी थीं जो कि कानूनी सीमा के भीतर थीं। दो बेटे एक बेटी। माँ संतुष्ट थी कि एक दहेज देना पड़ेगा तो दो आएँगे। पत्नी संतुष्ट कि उसका पति सामान्य नहीं सामान्य से कुछ ऊपर का है... यानी ज़मींदार से थोड़ा ही नीचे। तीस एकड़ पर दो ट्यूबवेल टुंके हैं। द्वार पर ट्रेक्टर खड़ा है। पिता से विरासत में मिली दोनाली ग्रीनर बन्दूक है जो रामलखन के जन्म की खुशहाली की साल आठ सौ में आई थी और आज अट्ठावन हज़ार की है। गो कि तब कारतूस चार आने में आता था और अब पिचचानवे रुपए में मिलता है। कुल मिलाकर अन्य पिछड़ा वर्ग की विशिष्टता के साथ सम्मानजनक स्थान पाये हुए किसान हैं, रामलखन। इसलिए किसी अन्य औरत के फेंट में पड़ भी जाए तो पत्नी और माँ पर इससे अधिक अंतर नहीं पड़ता कि गाँवों के अधिकांश प्रेम-प्रसंग फौजदारी से गुज़रते हुए दफ़ा तीन सौ सात या कभी-कभी तीन सौ दो तक जा पहुँचते हैं।

रामलखन की घरेलू योजना में तय हुआ है कि भविष्य लगभग उज्ज्वल है। पाँच-सात लाख का कर वसूल कर बेटी अपने घर चली जाएगी। दो में से एक बेटा भी कोटा तथा लाख दो लाख की भेंट-पूजा के सहारे किसी-न-किसी सरकारी कुर्सी पर चढ़ जाएगा। ज़मीन-जायदाद के लिए भी एक चाहिए ही। घर और नौकर पेशा की संरक्षा हेतु ऊपर देखभाल करनेवाले की भी आज के युग में महती आवश्यकता है तो दूसरे बेटे को नेता बना देंगे। इस व्यवसाय में व्यक्तित्व के विकास की अपरिमित सँभावनाएँ हैं।

पर प्रश्न तो यही रामलखन के मन में उमड़ता-घुमड़ता रहता है कि क्या वह भविष्य के मनमोदक चाटता हुआ इतने पर ही ठहरा रहेगा? बहस किससे करे, चलो मान लिया कि वह करोड़ों से अधिक सुखी संपन्न है, पर इससे क्या? वह प्रतिदिन जिन लोगों के चेहरे टी.वी. पर तीन-चार घंटे से अधिक देखता है, उन जैसा कुछ भी उसके पास है?...लाल चमकते चेहरे, इंद्रपुरी की सजावट को अँगूठा दिखाते घर, अप्सराओं-सी लुगाइयाँ, हंस से वाहन। वो ठवनि...वो चितवन...लहराना...बलखाना। ...और जिनके पास वो सब है, वे कोई देवता नहीं रामलखन की तरह हाड़मांस के आदमी हैं। जब उनके पास है तो रामलखन के पास क्यों नहीं हो सकता?

कहावत है कि श्रम और उद्यम से लक्ष्मी मिलती है और लक्ष्मी से सब मिलता है—किंतु दसियों को वह भी जानता है जिनके घर बोरों और ट्रकों भर माया है और वे कहीं पसीना नहीं बहाते। वह उन्हीं के उद्यम की खोज में चिंतित रहता कुछ और सा हो उठता है।

रात के समय जब फूल-वाले कांसे के गिलास में दूध-भर रामलखन के पलका के सिरहाने रख पत्नी बगल की खाट पर अधपसरी हो बच्चे को दूध पिलाती हुई थपकियाँ दे देकर सुलाने लगी तो टेबिल पर धरे टी.वी. में निगाहें गड़ाये पति से पूछ बैठी, “काये जी? का बात है?”

रामलखन की आँखें टी.वी. के परदे पर और मन कहीं दूर चहलकदमी कर रहा था अतः शायद उसने प्रश्न नहीं सुना। सँभव है अनसुनी कर दी हो कि हूँ हाँ करते ही ऊँट की तरह प्रश्नों की पाँत लग जाएगी।

क्षण-भर की प्रतीक्षा के बाद पत्नी ने ज़रा ऊँची आवाज़ के साथ पूछा, “सुन रहे हो कि नहीं! आखिर बात का है?”

रामलखन चौंकता हुआ सावधानी से अपने आसपास लौटा। उसका अपना कमरा, बेटे को स्तन चुसाती दिन-भर की राख-धूल के अंश ढोती, पानी-सानी गोबर और पसीने की गंध से सराबोर ‘गाय की उनवान’ पत्नी जो पेट भरने पर जुगाली करती, पूँछ उठाती और दूध देती है। अनख से भर वह चुप्पी और तस्वीरों में बना रहा।

पत्नी अपने अधिकार व मान में ज़रा ढीठ बनी, “मैं पूछ रही हूँ कि बीते अट्ठा से तिहारी खुराक काये टूटती जा रई है?”

“पहले क्या मैं राक्षस की नाई खाता था?” रामलखन तुनक के साथ बोला।

“राम! जै मैंने कब कही पर मर्द जैसी खुराक तो हती...।”

“कम खुराक से मैं नामर्द हो गया?” वह और भी तुनका।

“तुम तो बात को तांत सी तान रहे हो। मेरा तो बस इतना ही कहना है कि काफ़ी दिनों से किसी बोझ तले दबे, ढीले-ढाले दिखते हो। कौऊ पीर तकलीफ हो तो बजार जा के डॉक्टर को दिखाय लो।” पत्नी सहानुभूति से बोली।

रामलखन को भी लगा कि शायद वह अनावश्यक तन्ना रहा है अतः नर्म हुआ, “अरे डॉक्टर-वाक्टर की ज़रूरत नहीं!...तू नहीं समझेगी!”

यह नासमझी वाली बात रामलखन की पत्नी जनौरावाली न झेल पाई। अपने पैतृक गाँव जनौरा में वह पूरी बिरादरी में पहली मिडिल पास लड़की थी। अब तो खैर उसकी नाँव पड़ने से कुछ और भी ऊँची इमारतें निकल आई हैं पर जहाँ पहले का सवाल उठेगा वहाँ पहले प्रधानमंत्री, पहले राष्ट्रपति की तरह उसका ही नाम आता है, बाद में तो अब्बी-तब्बी भी पद पा जाते हैं। इस गाँव में वह अभी भी एक एकमात्र मिडिल पास बहू है। इस क्षेत्र में अन्य महिलाओं की यथेष्ट ईर्ष्या पर वह किंचित सुख और गर्व का अनुभव करती है—सो पति द्वारा प्रकारांतर से नासमझ ठहराने पर उसे ठेस लगनी ही चाहिए थी, जो लगी।

प्रतिक्रिया स्वरूप पुच-पुच की आवाज़ निकालते बच्चे के मुँह से स्तन

खींच ब्लाउज के भीतर धकेलती बोली, “तुमसे बस दो ही क्लास कम हूँ, पूरा नहीं तो कुछ कम समझ लूँगी।”

“खाक समझेगी तू।” रामलखन झुँझलाया...“अच्छा समझ! मुझे एक अरब यानी सौ करोड़ का मालिक होना है। यानी पूरे एक अरब...।”

जनौरावाली इस अप्रत्याशित घोषणा का कोई अर्थ न लगा मुस्कुरा दी और कोई प्रतिक्रिया करने को न पा बच्चे पर हाथ फेरने लगी।

“तुझे यकीन नहीं आ रहा है? समझ ले कि बस हो गया।” कहता रामलखन पलंग पर तकिये के सहारे उठगा हो आया।

जनौरावाली सचमुच अरब का मायना नहीं जानती। पाठशाला में इकाई, दहाई रटते हुए ज़रूर उसने सैंकड़ों बार दोहराया था—लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़, अरब दस अरब, खरब दस खरब। उसके हिसाब से ये सब पढ़ने-पढ़ाने की संख्याएँ हैं जिनका अस्तित्व आकाश पाताल, सूर्यलोक, चंद्रलोक की तरह कहने-भर को है। अस्तित्व हो भी तो किसी अंजाने अदेखे लोक में होता होगा। उसने तो ठीक से लाख को भी नहीं जाना समझा। इतना ज़रूर जानती है कि उसके घर परिवार की ज़रूरतें उसके से पूरी होती हैं। वह इतने पर संतुष्ट ही नहीं, अवसर पर गर्व भी कर लेती है। एक लंबी साँस खींच कर उसने अपना तकिया ठोंककर सिरहाने जमाया और पसरकर स्तन पुनः बच्चे के हवाले कर दिया।

पर्दे पर कुछ चल रहा था। उसने ध्यान लगाने की चेष्टा की किंतु वहाँ दिख रहे जनी-मर्द आदमी जैसे होते हुए भी किसी दूसरी दुनिया के लगते थे। वह प्रायः देखती उसमें कारें, कोठियाँ, धमाके, पुलिस, बलात्कार, हत्या, नोटों के अंबार। खाते-पीते बेचते-बिकते लोग। वहाँ न आदमी खेती करते हैं, न पशुपालन करते हैं। औरतें एकदम सजी-धजी पतुरिया बनी हिलहिलाती घूमती रहती हैं, “चूल्हे में जाय, हमें का लेना देना?” मन ही मन अपनी तरह का शाप देती थकी मांदा जनौरावाली की आँखों में नींद उतरने लगी।

गाँव में अभी तक थोड़ी बहुत जगार थी। उतरते अगहन तक हर कोई उम्मीद में डूबा रहा कि चौमासा सूखा गया तो दशहरे पर ज़रूर जल होगा। दशहरा बीता तो दिवाली या देव उठनी पर ग्यारस से उम्मीदें टिकीं। रोज़-रोज़ की पूछताछ से तंग पंडितों ने अपने पत्रा बाँध के धर दिए। कुओं ने क्वार में ही दाँत दिखा दिए थे। ट्यूब वेल चुल्ल-चुल्ल करने लगे थे। जल स्तर दिन-ब-दिन धसकता जा रहा है।

सरकार खेतीहर को निशाचर बनाने पर तुली है। दिन की जगह रात को बिजली छोड़ती है। पानी बरोहा तोड़ बेकार बह जाता है। ढूँढ़ते फिरो अँधेरे में कि किस बिल या दर्रे में समा गया। साँप, बीछी, कांतर काँटा...सब भुगतो। फ़ैसला

करनेवाले आदमी से भी डरकर संगीनों के पहरे में उठते बैठते हैं। एक बार पूष की रात में फसल को पानी लगाकर देखें तो पता चले कि अन्न के दाने किन मुसीबतों के बीच पेट तक पहुँचते हैं। लोग उठते-बैठते सरकार को कोसते। नेता, अधिकारी गाँवों की ओर रुख करते डरने लगे थे।

बिजली के व्यभिचारी चरित्र से तंग आकर रामलखन ने सावन में ही घरेलू जनरेटर खरीद लिया था। पंप बंद रहे—टी.वी. तो चलता रहे। यह सौदा ज़रा महँगा ज़रूर है पर जिसके पास ज़रूरत से अधिक है वह सुख खरीदता ही है।

चलती-फिरती तस्वीरों ने रामलखन के चहुँ ओर हरा ही हरा कर दिया। उसे ज्ञान हुआ कि संसार में ऐसी-ऐसी चीज़ें, ऐसे-ऐसे प्रसाधन हैं कि इस्तेमाल करने पर भालू भी कामदेव बन जाए। रामलखन में तस्वीरों-सा होने की ज़बरदस्त कामना जगी। वो जानता है कि ये दुनिया अनाप-शनाप पैसे वालों की है, इसलिए उसी टक्कर का धनवान होने का लक्ष्य उसने चुना। उसने देखा कि कुली, मैकेनिक, गाड़ीवान, फेरीवाले यहाँ तक कि कई बेरोज़गार भी थोड़ी-सी डिशुंम डिशुंम तथा एक दो मिनट के लिए जेल वेल जाकर अरबपति बन गए। उसने इसीलिए अरब की संख्या निर्धारित की थी।

लक्ष्य में सबसे प्राथमिक रोड़ा उसे अपना घर लगा जहाँ सब संतुष्ट थे। पत्नी अर्ली इन द मार्निंग भेंस दुहने और सानी पानी से दिनचर्या आरंभ कर रात को पेट भरी भेंस की तरह पगुराती हुई अर्ली टू बेड हो जाती है—चूल्हा, राख, बच्चों के गू-मूत, गोबर की गंध में सनसनाती हुई। रोज़-रोज़ वही रोटियाँ पाथ थाली में सरका देती है। जानने की ज़रा भी कोशिश नहीं करती कि दुनिया में कैसे-कैसे मस्त, भोज्य चोष्य और चाट्य पदार्थ हैं। बच्चे लबेरूओं की तरह दिखाई देते हैं। नहीं! ऐसे नहीं चल सकता...बदलना ही होगा समय के साथ न चलकर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहे तो इतने पिछड़ जाएँगे कि...? रामलखन अगली पीढ़ी के लिए अपने पिता की भाँति सिर्फ हल-बैल, खेत-खलिहान छोड़कर नहीं मरना चाहता। उसे बहुत चाहिए।...सब कुछ बहुत। खेती बस पेट भरती है करोड़पति, खरबपति, अरबपति नहीं बना सकती। वे दूसरे तरीके हैं जिनसे लंबी छलाँग लगती है।

खटिया की चरमराहट ने रामलखन का ध्यान बँटाया। जनौरावाली ने करवट ली थी। बच्चे के दूध पीने से कुछ बूँदें स्तन के अग्र भाग पर जम गई थीं। जोड़े में से एक आँगिया के बाहर था एक भीतर। रामलखन को मशहूर गाना ‘चोली के पीछे क्या है?’ का स्मरण हो आया फिर उसने सिर झटक दिया कि पीछे ऐसा ही है तो गाने में बार-बार पूछने की क्या ज़रूरत थी? नींद में जनौरावाली का मुँह कुछ खुल जाता है तथा हल्के खरटे गूँजने लगते हैं। गाँव की सर्वाधिक

शिक्षित महिला की इस विरूपता पर पहले रामलखन का ध्यान नहीं जाता था। एक टाँग की साड़ी भी घुटनों तक सरकी थी और दूधिया बल्ब के प्रकाश में रोंए स्पष्ट दिख रहे थे।

वह मन-ही-मन झुंझला उठा—बाज़ार एक से बढ़कर एक बालसफा क्रीमों से भरा पड़ा है, इसने एक भी तो कभी न आजमाई। *सकल पदार्थ है जगमाहीं करमहीन नर पावत नाहीं।*

माँ भी पुराने से चिपटी है। पैंतीस चालीस पर ही बुढ़ापा ओढ़ बैठ गई थी। वह नहीं देखती कि सफ़ेद बालों वाली साठ ऊपर उम्र भी साधनों से बीसियों साल नीचे उतारी जा सकती है। विदेशों में साठ पार वाले दनादन शादियाँ करते हैं। माना कि वे औरतें भी बहुत धनी होती हैं पर होती तो औरतें ही हैं न। साला ये देश ही अजीब है...लोग यूँ ही पैदा हो जाते हैं और यूँ ही अपने जैसों की बढ़ोतरी करते हुए जीते चले जाते हैं। खुद उसका परिवार भी यही लीक पकड़े रहे, यह लज्जा की बात है। वह ज़माने को दिखा देगा की जीना किसे कहते हैं।

अभी एक ही कमी है कि दिखाने लायक जीवन के लिए उतना प्रचुर धन नहीं है पर उसकी कोशिशें शीघ्र ही सफल होंगी। नियमित दर्शक और अख़बार का पाठक होने से उसे ज्ञान है कि हर्षद मेहता मामूली-सी क्लर्की और सुखराम नाकेदारी से ऊपर उठे हैं। अपने लालू भैंसें चराते थे। ख़ैर बाम्हन बनियों की जाति तो सदा से ऊँचे खेल खेलती आई है। लालू जी ने भी बड़ी पोस्ट पर चढ़ कर दाँव मारा। आज कौन मुख्यमंत्री है जो पाँच साल कुर्सी पर रह जाए और छोटी मोटी पाँच स्टेट ख़रीदने का जुगाड़ न कर ले। हिंदुस्तान हज़ारों साल से सोने की चिड़िया है जिसके रोंए-रोँए का मोल करने कई बैठे हैं। एकाध पंख बिक भी जाए तो क्या? उड़कर नहीं तो फुदक-फुदक कर काम चला लेगी। बैठे-बैठे ही तो खाना है।

अपनी हैसियत की पूरी नाप-जोख के बाद रामलखन ने ऊँची छलाँग वालों की सबसे निचली श्रेणी के निकट स्वयं को ठहराया था—वही एक अरब या सौ करोड़। हाँ उसमें इतने ही हेरफेर की कुव्वत है। ये धनराशि बैंक में जमा करने पर इतना ब्याज मिलता रहेगा कि मनचाहा कुछ भी ख़रीद लो। यूँ तो खुद की बैंक भी डाली जा सकती है पर उसे झंझट में नहीं पड़ना...आराम से खाना है। घर-भर तथा गाँव सो ही चुका था अतः उसने टी.वी. के बगल में रखा कैलकुलेटर उठाया तथा हिसाब लगाने लगा।

इकाई का एक दबा उसने दहाई का शून्य दबाया। फिर सैंकड़ा, हज़ार, दस हज़ार, लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़ फिर...। अगले अंक पर कैलकुलेटर अड़ गया...वह दबाए और कैलकुलेटर आँखें मिचमिचाये वहीं आ ठहरे। करोड़

से आगे बढ़ने को वह जैसे तैयार न था। रामलखन ने उसे ठोका बजाया, आड़ा, तिरछा किया पर शायद उसमें अगले शून्य की गुंजाइश ही न बची थी।

रामलखन अब मशीन के प्रति शंकालु हो उठा। बाहरवाले यही धोखाधड़ी करते हैं...ऐसी चीज़ें देते हैं कि एक हद से वह आगे न जाने दे। हिसाब निहायत ज़रूरी था अतः बचपन के सोटा मास्टर का सुमिरन करते हुए दहाई के शून्य का अंक कम किया तो हाथ की संख्या दसवाँ भाग रह गई यानी अरब के दस करोड़ अर्थात् सालाना ब्याज दस प्रतिशत मिले तो ब्याज के दस करोड़...बारह प्रतिशत वाली जमा पर बारह करोड़। यानी हर महीना एक करोड़। पर महीने की तीस दिन की प्रतीक्षा लंबी लगी सो तीस का भाग दे कर हिसाब लगाया—तीन लाख तैंतीस हज़ार तीन सौ तैंतीस दशमलव समर्थिंग...। समर्थिंग को बट्टे खाते में जाने दो। अब सुबह आँख खुलेगी तो तीन लाख तैंतीस हज़ार तीन सौ तैंतीस की रकम की गड़ियाँ सिरहाने रखी मिलेंगी।

ध्यान इस पर भी गया कि रोज़-रोज़ मिलनेवाले इतने रुपयों का वह करेगा क्या? हाँ सबसे पहले तो वह दुनिया का सबसे अच्छा टी.वी. सेट ख़रीदेगा। एक दिन की आमदनी में से जो रुपए बचेंगे उससे खाल बाल, एड़ी नाखून वगैरह-वगैरह चमकाने वाली चीज़ें ले ली जाएँगी। दूसरे तीसरे दिन में बढ़िया कार। चौथे रोज़ नज़दीकी रिश्तेदारी सहित घर-भर को हाईक्लास जूते जूतियाँ, कपड़े लते। अरे! जब ईश्वर दे रहा है तो खर्च-भर से हाथ क्या खींचना। पाँचवे दिन का पैसा घर की दुरुस्ती में...कुछ मरम्मत कुछ निर्माण। गाँव में पैसा लगाने की कोई तुक नहीं इसलिए छठे से दसवें दिन की रकम से शहर में कोठी ख़रीदनी होगी। ग्यारह से पंद्रह दिन तक तीन चार विधायक और पंद्रह से बीस तक सांसद।

इतना होने पर पाँच दिन खर्चने पर जिले का कलक्टर, एस.पी., डी.आई.जी. वगैरह भी आसानी से मिल जाएँगे। अख़बार वाले फोटो के लिए खुद ही चक्कर काटने लगेंगे उन्हें भी कुछ...। पैसा पास हो तो क्या नहीं मिलता। मन-ही-मन इसी तरह के हिसाब जमाता रामलखन सो गया।

उसके चारों ओर रुपयों के ढेर लगने लगे। सुबह वह जागता...सिरहाना नोटों का होता। सुबह की प्रतीक्षा में रामलखन की नींद जाती रही। कोई मेहनत उसे करनी नहीं थी बस दैनिक क्रियाओं से निपट, खा-पीकर रात को सोना भर था। उसे भय जग गया कि शायद वह सोकर न जगे तो सवेरा न हो और उसे दिन का घाटा सहना पड़ जाए। धन की सुरक्षा के धुन ने अलग से छेद करना शुरू कर दिया था। लूट के लालच में कोई हमला भी कर सकता है...बच्चों का अपहरण हो सकता है। जाने कौन-कौन सी अयाचित चिंताएँ उसके आसपास मँडराने लगीं।

वह रात-भर अपनी चिंताओं से युद्ध करता रहा। सुबह होने पर पत्नी अपनी दैनंदिनी दिनचर्या में जुट चुकी थी...सिरहाना खाली था। रुपए कहाँ गए? उसे हदका बैठा। पूरी देह में पसीना छलछला आया। कोई चोर तो नहीं ले गया?...पत्नी ने उठाए होंगे...वह उठाती तो जरूर जगाकर पूछती...क्या पता पत्नी ने छिपाकर रख लिए हों, औरतें गहनों रुपयों की बहुत लालची होती हैं। रामलखन ने आतुरता से पत्नी को आवाज़ दी। पल्लू से हाथ पोंछती जनौरावाली कमरे में घुसी, “सबरे ही सबरे काये चिल्ला रहे हो?”

“वो...वो रुपए?” तेल का घूँट भरता-सा वह बोला।

“इस टेम का करोगे रुपयों का? धरै तो हैं मैंने खा लिए क्या?” वह झुंझलाई।

“नहीं मेरा मतलब है सँभाल के...”

“सँभले ही धरे हैं, ताले में” जनौरावाली ने काले डोरे में बँधी, गले की चाभी दिखाई।

आश्वस्त हो रामलखन बोला, “सुन! दो एक दिन में बाज़ार चलेंगे।”

“काये?”

“अरे पता लगाएँगे कि सबसे अच्छी चीज़ें कहाँ मिलती हैं। कार खरीदना है...काम चलाने अभी कोई भी उठा लेंगे, बाद में बढ़िया भी देखेंगे। फ़िलहाल के लिए कोठी भी तलाशनी है। कपड़े, कंगन, साबुन, तेल, क्रीम, पाउडर...जो भी तुम्हें लेना हो।”

“अभी हमें कुछ नहीं लेना।”

“क्यों? ज़रा बन सँवर के रहो तो क्या बिगड़ जाएगा?”

जनौरावाली हँसकर बोली, “बनेगा भी क्या? भाग्य में तुम लिखे थे सो हो।”

वह भड़कने लगा, “बेवकूफ औरत! तू समझने की कोशिश तक नहीं करती।”

“तुम बावरे काये हो रहे हो? कार, कोठी...आज सबरे चढ़ा ली का?”

रामलखन के मन में आया कि दो चार झापड़ रसीद दे। गुस्सा फूट न पड़े, इस खयाल से वह आँगन में निकल आया। माँ खटिया पर बैठी एक बच्चे को कंधे पर थपथोर रही थी और दूसरे को टिलिल-टिलिल कर बहलाए जा रही थी। कमरे की आवाज़ें उसके कान तक पहुँची जरूर पर पति-पत्नी की नौक-झोंक से उसे कुछ लेना-देना न था फिर भी वह आँगन में जा गरजा—अम्मा इसे समझा! तू खुद भी कुछ शऊर सीख! नहीं तो...।”

माँ ने मुस्कुराते और बच्चों को दुलारते पूछा, “का हो गया? नहीं तो का

का मतलब?”

“नहीं तो मैं कोठी में रहने के लिए दूसरी ले आऊँगा।”

“काये की कोठी, कैसी दूसरी?”

“खुलवाना ही चाहती है तो सुन ले! ...लुगाई ले आऊँगा दूसरी।”

“दिन उगते शुभ-शुभ बोल बेटा।”

“क्या शुभ होगा? वह गुराया, “तू इन पिल्लों को लटकाए भूतनी सी बनी रहती है और वो चुड़ैल सी। और भी औरतें हैं दुनिया में। माँ है...बच्चे हैं। देखो तो जानो कि वे कैसे फूल से खिले रहते हैं। घर में रोज़ लाखों का आमद है...पूछ अपनी बहू से कि इतने रुपयों को क्या वह गोबर में थापेगी?” गुस्से से उबलता रामलखन घर से निकल पड़ा।

सास बहू को इस चरित-लीला से खुटका हुआ कि कहीं किसी भूत-प्रेत, देई देवता की हवा तो नहीं आ गई इस पर? किंतु सुबह के जरूरी कामों में जनौरावाली फिर व्यस्त हो गई।

दोपहर तक गाँव-भर में खुसुर-पुसुर फैल गई कि रामलखन का दिमाग चल गया है। उसका दौरा इकाई, दहाई के संग-संग घटता बढ़ता है।

प्रेत-पग

ददू बलवंत सिंह ने पुड़े में से अगरबत्तियाँ निकालीं और हूँ-हूँ स्वर के साथ हुनहुनाते हुए आलमारी को अपनी उसी सुपरिचित निगाह से खँगालने लगे जिससे वह किसी मुलज्जिम को छानते और फँसाते हैं। स्वयं उनकी पत्नी तक इस दृष्टि का शिकार हो अनेक बार बिफर चुकी हैं। एक बार तो पूछ ही बैठी थीं कि कभी-कभी तुम्हारी आँखें ऐसी क्यों उठती हैं?

“कैसी?” ददू ने पूछा था।

“जैसे भेड़िये की होती हैं।”

द्वितीया पत्नी के इस सपाट उत्तर पर ददू अवाक्, मुँह फाड़े उनकी ओर देखते रह गए थे।

इस समय ददू आलमारी के सामने सद्यनात, लुंगी लपेटे खड़े थे।

सिर के दरमियाने बालों पर पर ओस कणों की तरह कुछ बूँदें ठहरिं थीं और शरीर की भरपूर फसल भी लगभग इसी स्थिति में थी। हिलने डुलने पर कुछ बूँदें फर्श पर झड़ जातीं और कुछ मिल जुलकर नीचे की ओर बहते हुए लुंगी में विलीन हो जातीं।

आलमारी का ऊपरी खाना भगवान के लिए सुरक्षित है जिसमें अब जगह कम पड़ने लगी है। भगवानों को नीचे के खानों में उतारने की गुंजाइश नहीं क्योंकि वे शेविंग बॉक्स, सिंगारपेटी, पानदान, कलम-दवात, हेयरपिन, कागज़, कपड़े, किताबों जैसी ज़रूरी चीज़ों से उफने पड़ रहे हैं। दो कमरों के मकान में इतनी सी जगह, भगवान के लिए बड़ी मुश्किल से निकल पाई है।

तीन फुट लंबाई के साथ चार, खानों वाली आलमारी में सचमुच ही जगह की कमी है। ऊपर भगवान वाले हिस्से को ही लें जिसमें पीतल के सिंहासन पर जरी वस्त्रों में सजे बालगोपाल और शालिग्राम का स्थान तो सुरक्षित है। दीवार वाले पीठ टिकाऊ हिस्से के मध्य में लक्ष्मी हैं जिनके अगल-बगल भोलेबाबा तथा शंखचक्रधर विष्णु का स्थान नियत किया जाता रहा है। योगासन की मुद्रा में, कैमरे

की आँख से आँखें मिलाए, फोटो खींचे जाने को सावधान दिखते त्यागी बाबा महाराज को भी नहीं छोड़ा जा सकता था आखिर ग्रहस्थ और ईश्वर के बीच भक्ति तथा इच्छापूर्ति वाले आदान-प्रदान का माध्यम तो वही हैं इसलिए उनकी छोटी-सी फोटो तिरछी करके जमानी ही पड़ी है। तीर्थयात्रा से लौटते किसी भक्त ने जगन्नाथ जी की तस्वीर भी ददू को भेंट कर दी थी। ददू उन्हें न छोड़ सकते थे, न ग्रहण ही कर पा रहे थे अंततः जगन्नाथ जी भी आलमारी में आ गए। दुर्गा या काली ताड़फाड़ वाली देवी हैं—उनके आगे ब्रह्मा विष्णु की भी नहीं चलती सो कछरौली वाली व वैष्णोदेवी के रूप में वह थीं ही। गृहिणी किसी पीर बाबा की मज़ार खरीद लाई थीं—कुल मिलाकर इस ऊपरी खाने में इतनी गड़बड़झाला थी कि खाना सँभालते-सँभालते हलकान हुए जा रहे ददू बलवंत सिंह (दीवानजी) सुबह शाम की पूजा में आलमारी के सामने खड़े होते ही और भी परेशान हो जाते। एक दूसरे को ठेलते, सरकाते अपने लिए जगह बनाते देवताओं को देख उन्हें कभी कभार हवालात में जुटजाने वाली क्रैदियों की ठेलमठेल का ध्यान आ जाता जहाँ सोने बैठने की जगह पाने के लिए हाथापाई तक हो जाती है। ऐसे मौकों पर ददू के पास एक ही इलाज होता कि डंडे के सहारे कानून-व्यवस्था क्रायम करें। देवताओं के संदर्भ में जाने अनजाने यह हुआ कि आलमारी से बाहर ठीक बगल में गदाधारी बजरंगबली का कैलेंडर टाँग दिया गया था।

पूजा क्षेत्र में छोटी मोटी दो घटनाएँ और हुई थीं—एक यह कि न जाने किस प्रेरणा के तहत ददू दीवान के स्कूली बच्चे, अपनी चाट, आइस्क्रीम वाली बचत से देवियों में निहायत शरीफ़ क्रिस्म की मास्टरनी-सी लगती सरस्वती खरीद लाए थे—चूँकि पूजा विभाग में वैसे ही ले-दे मची हुई थी और हरेक को अलग-अलग कक्ष की दरकार होने पर भी एक ही केबिन में ठूस दिया गया था, अतः टेबिलों की दचका पटकी, खिसका-खिसकी और मैत्रीपूर्ण विरोध के साथ-साथ मुख्य परेशानी यह थी कि एक-दूसरे की सीधी-तिरछी नज़र से बचाकर काम करना संभव नहीं था और इस तरह हमेशा गोपनीयता भंग होती रहती थी, फिर देवता चूँकि किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं होते, अतः सिवा कुछ औपचारिक व निश्चित परिणाम वाली जाँचों के उनके विरुद्ध कुछ किया नहीं जा सकता था। बहरहाल सरस्वती जी को ठूसने की फ़ौरी तौर पर कोई आवश्यकता न थी सो एक रात गृहप्रभारी से मंत्रणा कर सरस्वती ताल पर रख दी गई। बच्चों ने जो घुराघुरी की, उसके बदले में एक को नए कपड़े मिल गए, दूसरे, ज़िद्दी को डंडा दिखा दिया और तीसरा सब कुछ देखकर-सुनकर अच्छे बच्चे की तरह मान गया।

दूसरी घटना ने भी बच्चों के दबे-घुटे आक्रोश के तहत ही जन्म लिया कि उन्होंने ठीक महावीर हनुमान जी के बगल में कील ठोककर, फूल की पंखुरी-

सी कोमल, मोहक, आतुर आमंत्रण देती माधुरी नायिका लटका दी। इस अपराध पर ददू पहले तो चौंके, फिर उनकी मूँछों के बाल फरफराये, अंततः सामाजिक न्याय का स्मरण कर, बच्चों के नागरिक अधिकार के साथ अपने उज्ज्वल भविष्य का समीकरण रखते हुए, बिछी-बिछी जानेवाली नायिका को उसी तरह लटकी रहने दिया।

ददू हाथ में अगरबत्तियाँ लिए पूजा का पद गुनगुनाते हुए निगाहों से माचिस खोजने लगे। वह बिना किसी भेदभाव के बैठी, लटकी सभी आकृतियों को अगरबत्ती का सुगंधित धुआँ सुँघाते हैं। चूँकि वह हर समय ड्यूटी के ख़याल में रहते हैं अतः सभी गार्हस्थिक नित्य कर्म जल्दी-जल्दी निपटाने पड़ते हैं। दो तीन बार आँखों से खखोलने के बाद भी अपने स्थान से फ़रार हुई माचिस की डिब्बी की बरामदगी न हुई तो किंचित क्रोध में आकर उन्होंने डपट फेंकी, “ये ससुरी माचिस कहाँ घुस गई?”

डपट फेंकने के साथ ही स्मरण आया कि लड़की सयानी होती जा रही है और शायद कुछ-कुछ समझने लगी है। ग्रहिणी ने पिछले वर्ष, स्वयं के उपयोग में आनेवाली कुछ सामग्रियों के दुहरे पैसे माँगे थे। इस पर उन्होंने जब अपनी दीवानी दृष्टि पत्नी के चेहरे पर फेंकी थी तब पत्नी ने मुखबिर की भाँति गोपनीय-सी सूचना दी थी कि बेटी की भी कुछ ज़रूरतें हो गई हैं।

उस समय बलवंत के दिमाग में चायवाले उस्ताद जाकिर हुसैन के तबले की तरह कुछ द्रुत गति से बजा था। तभी से उन्होंने द्वितीया पत्नी की वय के समकक्ष आने के काली मेहँदी आदि के उपयोग जैसे प्रयास बंद कर दिए थे।

ददू ने जब माचिस बाबत जानकारी चाही थी तब पत्नी बाथरूम में गुनगुनाती हुई, दूरदर्शन पर सुझाए गए, रंगरूप निखारने वाले किसी साबुन के परीक्षण में संलग्न थीं—अतः पति की पुकार अनसुनी हो जाना स्वाभाविक था। लड़कियाँ बगल के कमरे में किताब कापियों के साथ बैठीं—लुढ़की थीं तथा दसवर्षीय पुत्र अंत्यज होकर, पिछड़ा होने के पूरे अधिकारों का उपयोग करता हुआ सो रहा था। वंश चलाने के लिए पिता को उसकी आवश्यकता थी। हरकतें नज़र-अंदाज़ करनी पड़तीं।

वह बहनों पर अक्सर हाथ चला बैठता—उन्हें घर का बोझ मान निकल जाने तक का आदेश दे देता। ख़ैर बिना करे धरे खाने-पहनने का उसके लिए परिवार में सर्वमान्य अधिकार था अतः वह सोने की मुद्रा बनाए आराम के मजे ले रहा था।

कहीं से उत्तर न पा बलवंत ददू चीखे, “सब बहरे हो गए क्या?” ददू की यह कड़कदार आवाज़ गलियों, चौराहों पर दफ़ा एक सौ चवालीस का काम

करती है। इकट्ठे हुए लोग राई-काई हो जाते हैं, जलूस-वलूस में शांति, व्यवस्था कायम रहती है। इस चेतावनी के तत्काल बाद ददू का डायरेक्ट एक्शन शुरू हो जाता है।

आवाज़ की अनुगूँज से गृहिणी का गुनगुनाना धीमा हो गया। उन्हें लगा कि शायद वह आ गया है जो उनके ना ना करते तौलिया वाला हाथ बाथरूम में बढ़ा देगा। तब वे सकुचाती-शरमाती, बूँदों भरी देह पर तौलिया लपेटे, “चलो हटो” कहतीं अपने कमरे की ओर दौड़ जाएँगी। इस सपनीली चौखट में वह ददू का खिज़ावी मूँछोंवाला रूप बार-बार लातीं, पर चौखट उसे परे धकेल देती।...ददू लगभग इसी समय चीखे थे...

“क्यों चीख रहे हो? ये थाना नहीं कि कुछ भी करते धरते रहो...।”

“डेढ़ घंटे से ढूँढ़ रहा हूँ...नहीं मिल रही। अस पी साब आएँगे आज थाने।”

“शहर में ऐलान क्यों नहीं करवा देते? ढोल बजा के।”

“अरे नौकरी पर जाना पड़ेगा कि नहीं?” ददू वातवरण सहज बनाने के प्रयास में दिखे।

गृहिणी बड़ी बेटी पर चमकीं, “ए ए सुधा! सुनाई नहीं पड़ रहा है कि बाप पूजा के लिए खड़े हैं और तू किताबों में सिर दिए बैठी है। ढूँढ़ के दे माचिस!” गृहिणी पुनः अपने स्वप्नलोक में लौटने के उपक्रम में सन्नद्ध होने लगीं।

सुधा ने कहीं से ददू तक माचिस पहुँचाई तो उन्होंने एक और काम बता दिया, “बेल्ट पर ब्रासो फेर देना...फटाफट बेटी! वर्दी आ गई प्रेस होकर? आदो राम तपोवनादि गमनां...।”

“मम्मी को पता होगा।”

“पूछ तो ज़रा...हत्वा मिरगा कंचनम्...।”

सुधा के जाते ही ददू का स्वर कुछ ऊँचा हो गया। पूजा के समय वह मकान के अन्य किराएदारों को ही नहीं, सटे हुए घरों तक भी यह संदेश दे देते हैं कि तुम लोग जो सोचते हो रिश्वत आदि के बारे में...तो यह भी तो देखो कि हम पूजा भी पूरे मन से, डंके की चोट करते हैं।

ददू ने सुगंधित धुआँ छोड़ते अगरबत्ती के जोड़े को, आँख कुछ बंद थोड़ी खुली रख पहले लक्ष्मी जी पर घुमाया, फिर पूरी गैलरी में धीरे-धीरे टहलाते हुए बजरंगबली की ओर मोड़ दिया।

अगरबत्ती हनुमान जी के सामने घुमाते समय, वज्रांग पर ध्यान एकाग्र करने में बगल वाली माधुरी नायिका सदैव व्यवधान उपस्थित करती है। दानव दलन, कपिशूर की वज्र देह पर चित्त तभी स्थिर हो पाता है, जब ददू एक आँख खोलकर

क्षण-भर के लिए माधुरी मोहिनी सूरत निहार लेते हैं।

“तनिक बाहर हो जाओ! हम कपड़े पहन लें।” पेटीकोट के ऊपर साड़ी समेटे, तौलिया का साफा सा बाँधे सद्यस्नाता पत्नी ने प्रवेश किया तो घी में बाल आ जाने की तरह ददू का जी भिनक गया।

“भाई! कपड़े बाथरूम में ही पहन लिया करो। इस तरह अधनंगे आँगन फलाँगना...? मकान में दूसरे लोग भी बसते हैं।”

“दूसरों के यहाँ बीवियाँ नहीं हैं क्या?” कह, पत्नी कोने की ओर मुँह फेर साड़ी बाँधने लगीं।

ददू पुनः पूजा की ओर मुड़ लिए, “जय हनुमान ज्ञान गुन सागर जै कपीस तिहुँ लोक उजागर...। सुनो! अस पी साब से जाने कब तक निपटना हो पाए? दो चार पराँठे उलट लो! और लड़कियों को अकेले स्कूल न भेजा करो। पप्पू छोड़ आया करे।”

“क्यों? क्या हुआ?”

“अरे, थाने में रोज़ नई-नई तरह के केस आ रहे हैं...तुम्हें क्या-क्या बताएँ?”

पत्नी को किसी खास तरह का केस जानने की उत्कंठा हुई पर वह दबा गई। बोलीं, “पप्पू सुनता है किसी की? उसे तो बस खाना और खेलना...। मैं कहती हूँ कि इस तरह बिगड़ेगा वो और नाम मुझे धरा जाएगा कि सौतेली माँ...।”

“अच्छा ऐसा करो कि उसे छोड़ने की अठन्नी रोज़ बाँध दो। घर सँभालने की ज़िम्मेदारी तो तुम्हारी ही है भाई। हम क्या-क्या करें? थाना देखो, हाकिमों की ज़रूरतें पूरी करो। अस पी साब की बाई जी ने देसी घी को बोल दिया है। छोटे अफ़सर को चार छह किलो में निपटा लो। वहाँ कनस्तर से कम भेजते क्या अच्छा लगेगा?”

कोतवाल अपने हिस्से की पाई नहीं छोड़ना चाहता। हर तीसरे दिन सी अस पी की फ़रमाइश आ जाती है। अस.डी.अम., पी.पी. से अलग भुगतो। ...नीचे के कर्मचारी भी सब देखते हैं...आखिर उनके भी बाल बच्चे हैं। वो हाथ ऊपर कर लें तो कुछ चल पाएगा? ऐं...?

“तो इसके लिए मैं क्या करूँ?” पत्नी ने साड़ी का पल्लू कंधे पर लेते उत्तर दिया।

ददू ने भरी-भरी नज़र से पत्नी की ओर देखा और घंटी टिनटिना दी, “जै हो, जै हो।”

इस प्रकार अपना ही चक्कर लगाते हुए मानसिक परिक्रमा समाप्त कर, सूर्य भगवान को अर्घ्य देने वह सीढ़ियाँ चढ़ गए। छत पर उन्हें रोज़ जिस संवैधानिक

संकट का सामना करना पड़ता है वह यह कि अर्घ्य का पानी भी छत से बहकर उन्हीं मोरियों में पहुँचता है जहाँ लोग अपनी ज़रूरतें निपटाते हैं। ददू को तब लगता है कि इस देश का सत्यानाश हो ही इसीलिए रहा है कि मंत्री-संत्री कलेक्टर चपरासी सबके लिए रिजर्वेशन है, पर पूजा के लिए एक मोरी तक रिजर्व नहीं। दीवान बलवंत सिंह का बेंत क्या-क्या सँभाले? लोगों में भी तो समझदारी और अनुशासन होना चाहिए।

खाते, पहनते, निकलते ददू को साढ़े आठ हो गए। ददू के हिस्से दिया गया इलाक़ा है तो शहर के किनारे वाला थोड़ा अलग-थलग-सा, पर दो कारणों से ज़रा कमाऊ है। एक तो थाने की सीमा में मंडी लगती है, दूसरे मिल एरिया आता है। गुंडों से बनाए रखने व बचाए रखने वाले मोर्चों पर दोनों के पुलिस के सहयोग की आवश्यकता रहती है। मिलवाले ऊँचे स्तर से सहयोग लेते हैं, मंडीवाले थाने के स्तर पर। मंडी का आदृतिया छोटे बड़े चंदों की सूची में थाने का नाम भी जोड़कर रखता है ताकि लुच्चे गुण्डों के विरुद्ध कानून सक्रिय रहे व मंडी में क्रेता विक्रेता निर्भय आ जा सकें। मिलवालों के खेल ज़रा ऊँचे हैं जो ददू के पल्ले नहीं पड़ते। वह बस इतना जानते हैं कि वहाँ से थाने के हिस्से में खुरचन आती है और वो भी इतनी कि संतोष बना रहे।

घर से निकलने से पूर्व ददू ने बुंदकियों भरे शीशे में अपना ‘टर्नआउट’ देखा तथा क़ानूनी बैग व बेंत मोटर सायकिल के कैरियर पर दबा, सवार हो मूँछों पर हाथ फेरा और किक मार दी। उन्हें इस बात का पूरा अहसास है कि दरोगाओं की तो ख़ैर मोटर सायकिल बिना तस्वीर ही नहीं बन पाती, पर वह ज़िले के गिने चुने मोटर सायकिल वाले दीवानों में से एक हैं। मोटर सायकिल का हैंडिल मुठ्ठियों में कसते ही वह कुछ-कुछ दरोगा हो जाते हैं।

मंद गति से इधर-उधर का जायज़ा लेती हुई चलनेवाली दीवान जी की मोटर सायकिल ने जब थाने के अहाते में प्रवेश किया तब तक गिनती हो चुकी थी।...यानी बिना ददू के। अभी तक यह अफ़सरी वही करते आ रहे थे। उन्होंने एक नई भरती वाले सिपाही से पूछा—हो गई?

“जी साब!”

“किसने ली?”

“कोतवाल साब ने।”

कोतवाल उनसे न केवल उम्र में अपितु जाति में भी छोटा था, अतः सैल्यूट देते समय बलवंत सिंह रस्म अदायगी-सी करते थे। रस्म अदायगी से निपट वह रोज़नामचा में आमद डालने मुंशी के कमरे की ओर मुड़ गए।

कमरे में पहुँच टेबिल पर अफ़सरी दृष्टि टिकाते उन्होंने हालचाल पूछा,

“मेरे बाद किसी जरायम की सूचना आई क्या?”

कागज़ पत्र सँभालता मुंशी बोला, “नहीं।”

“उस लौंडिया का क्या हुआ?”

“घरवाले लाश लेने गए हैं। पोस्टमार्टम की खबर है कि डूबने से मौत और उसके पूर्व जमकर बलात्कार। आठ जगह हाथापाई, खरोंच वगैरा के चिन्ह, ब्लाउज के बटन व ब्रेसरी का हुक खिंचाव से टूटा।”

“दिखाना ज़रा।”

“कोतवाल साब के पास है।”

“हूँ ऊँ।”

मुंशी फुसफुसाया “कोतवाल साब मुँह अँधेरे छै नंबर चौराहे की तरफ़ गए थे। कुछ हो गया लगता है।”

“हूँ ऊँ...। और कोई बात?”

“कन्फ़ीडेन्सियल जानकारी मिली है कि जलाने से पहले जलूस निकाला जाएगा।”

“साले माहौल ख़राब करना चाहते हैं। अच्छा हुआ कि बाप मास्टरी करता है, हरिजन वरिजन नहीं है—नहीं तो ख़ाम खाँ आफ़त हो जाती। खुद ध्यान नहीं रखते, भुगतना पुलिस को पड़ता है।”

बलवंत सिंह कुछ सोचते हुए बाहर निकले। दो ए.एस.आई. गपिया रहे थे। उनके कंधों पर एक एक सितारा था—बीट भी मिली हुई थी, पर बलवंत सिंह दोनों को भोंदड़ मानते थे। दोनों को ददू द्वारा दिए गए इस विशिष्ट पदक की जानकारी थी किंतु बलवंत का डीलडौल तथा एस.पी. की बाई साब तक पहुँच दोनों को बहुत कुछ करने से रोके रहती थी। बलवंत सिंह ने उधर पहुँच चेतावनी की तरह सूचना दी—

“अस.पी. साब आ रहे हैं आज। ज़रा अपनी अपनी बीट सँभालकर रखिएगा—छोटे दरोगा जी। माहौल कुछ ठीक नहीं लगता है।”

“अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता दीवान जी। और अपना हाथ पाक साफ़ हो तो तबादले से बड़ी सजा कोई माई का लाल नहीं दे सकता।” एक छोटे दरोगा ने तलख़ी से कहा।

बलवंत सिंह को पता है कि दरोगा के साथ ‘छोटा’ लगाने से यह चिढ़ता है। वह भी इसीलिए लगाते हैं कि एकाध फूलवाला होने से हैसियत बड़ी नहीं हो जाती है।

ददू की नोटिस में न आ पाया था कि कोतवाल के कमरे से उनके लिए बुलावे के संकेत हो रहे हैं। ए.एस.आई. ने कूट मुस्कान के साथ उन्हें अवगत

कराया तो ‘ठीक है, देखते हैं’, की मुद्रा में वह कोतवाल के कमरे में घुस गए। इस बार उन्होंने सैल्यूट नहीं किया। कोई तीसरा उन दोनों को देखता तो उसे लगता, जैसे पद और जाति एक दूसरे को तौल रही हो।

“बलवंत सिंह! सँभाल लोगे?” कोतवाल ने पहल की।

“क्या?”

“मास्टर है। इसका इमीजिएट अफ़सर कौन होता है?”

“हैड मास्टर।”

“नहीं भाई! बैठिये आप। मेरा मतलब है जो थोड़ा दबा सके, बुरा भला कर सके। उस तक एप्रोच करना है...हेंडिल करना है...सी.एस.पी. ने कहा है। उन्हें ज़रूर एस.पी. साब ने कहा होगा। क्या पता बात और भी ऊपर से चली हो।”

“देखिए सर! काम सब थाने से ही चलना है। एफ.आई.आर. और रोज़नामचा तो हमारे हाथ है। कोई आया था क्या आप तक?” ददू ने अँधेरे में तीर मारा।

“उस तरह से तो नहीं...हाँ, कुछ इशारे मिले हैं। पहुँच वालों के लड़कों का मामला है। क्या पता ऊपर कुछ हुआ हो।”

“पर आप तो नहीं हैं ना कहीं? बस...। बलवंत सिंह सब समझ लेगा।”

“देखिए साब! डर होता है नंगों से। ये तो पैसे वाले इज्जतदार है। इंजीनियर, ठेकेदार और वो कल्लोनाइजर...हाँ ज़रा एस.डी.ओ. से दिक्कत होगी तो उसे तफ़्तीश में गुंजाइश दे देंगे।” बलवंत सिंह थाह लेने के अंदाज़ से धीरे-धीरे उतर रहे थे।

“देखो साब! पता नहीं आप किस मिज़ाज के हैं पर अपना साफ़ है और आज तक का रिकार्ड है कि हम अपने अफ़सर के हिसाब से चले हैं—धोखाधड़ी और दोगलापन न कभी किया न करेंगे। बस एक ही बात कुछ लोग पसंद नहीं करते पर अपना उसूल है कि थाने में धेला आए या कल्दार, वह जानकारी में रहना चाहिए। छिपाना ही बेईमानी या भ्रष्टाचार है।”

थाने की गंध से हरात का अनुमान लगाने में माहिर ददू ने भौंप लिया था कि कोतवाल कुछ छिपा रहा है! अतः अंदरूनी भाप का दबाव बढ़ाने के लिए उन्होंने गर्मी बढ़ाई—

“सर! परेशानी ये है कि ये कोई चोरी-चकारी, हेरा-फेरी, झगड़े-टंटे का मामला नहीं है। क्रतल है लड़की का सो भी क्या कहते हैं—रेपसीन के बाद। विधानसभा कुश्चन तो तुरंत बनता है।”

“ये क्रतल नहीं, आत्महत्या है।” कोतवाल ने थोड़ा वज़न कम किया।

“वही तो ख़तरनाक है। हाल दनदनाता है जुलूस। ये जो गली-गली में नेता

उग पड़े हैं—उन्हें अखबार में नाम और फोटो छपाने के लिए कोई भी बहाना चाहिए। क्या पता कौन-सी चीज़ लॉ एंड ऑर्डर हो जाए?”

“गिरफ्तारी तो करनी पड़ेगी। मास्टर का क्या भरोसा? कहीं तन गया तो स्कूल, कॉलेज के लॉंडे आ जाएँगे मैदान में। पहली माँग हमारे—तुम्हारे निलंबन की होगी। ऐसे मामलों में कभी कभार नौकरी पर भी बन आती है।”

कोतवाल भीतर से ढीला, ऊपर से कड़ा हुआ, “अब जो होगा—देखेंगे। आप कुछ सँभाल सकें तो ठीक है, नहीं तो मैं एस.पी. साब से भी बोल दूँगा। पुलिस की नौकरी है ही ऐसी कि चाहा-अनचाहा सब भुगतना पड़ता है। कोई हम सजा देनेवाले तो हैं नहीं। जिसे हम ईमानदारी से सज़ा दिलाना चाहते हैं—उसे वकील छुड़वा देते हैं...। गवाह मुकर जाते हैं...कभी-कभी तो फरियादी ही राजीनामा कर लेता है। हम घास की रोटी खायें तब भी लोगों को हमारी रसोई में घी का बघार ही दिखता है।”

ददू को कोतवाल खिन्न होते लगे। खिन्नता कोतवाल को शोभा नहीं देती। वह इलाक़े का समर्थ पुरुष होता है। इलाक़ा अफ़सर की ठसक से सजता है। ददू सौहार्दपूर्ण वातावरण के पक्ष में आ गए, “अरे साब! जलूस-वलूस भी होते रहते हैं। अपनी सर्विस में यही सब देखा है। इधर चाहे आप उम्र का तकाजा कहें—अपन को इस साल लड़की निकालनी है। सयानी हो रही है। ससुरा दहेज का चलन ऐसा बढ़ा है कि...पुलिस वालों के यहाँ तो लोग सब मुफ्त का माल मानते हैं...। हमारी जाति दहेज के मामले में और भी ज़्यादा बदनाम है...।”

“सब ऊपरवाला देखता-भालता है। आदमी को तो अपना कर्म करना चाहिए। लड़कियाँ भी अपना भाग्य लेकर आती हैं। चोंच देनेवाला चुगना भी देता है। आप तो होशियारी से काम कीजिए। कर्म का फल भी मिलेगा।” कोतवाल साब दर्शनिक भाव से मुस्कराए।

“ठीक है साब! तो मैं निकलूँ? ज़रा अस.पी.साब की कोठी पर भी जाना है। बाई साब को कुछ काम है। वह बड़ी रहमदिल हैं...मुझ जैसे छोटे कर्मचारी पर भी भरोसा करती हैं।”

कमरे के भीतर जोरदार-सा सैल्यूट ठोककर ददू बलवंत सिंह बाहर निकल आए और थाने के हनुमान जी की परिक्रमा कर, मोटर साइकिल के पास पहुँच हैंडिल मुड़ियों में ले लिया।

थाने से बाहर निकल घर पहुँचने के लिए उन्होंने रफ़्तार बढ़ा दी। लड़कियों को स्कूल आने-जाने के लिए शहर के भरोसे पर नहीं छोड़ा जा सकता। उन्हें स्वयं ड्यूटी के बीच लाने, ले जाने की जिम्मेदारी सँभालनी पड़ेगी। ज़माना बढ़ा खराब आ गया है।

गोद में गाँव

रात किसी रीछ की तरह पूरे गाँव को चपेटकर पसर गई थी। सुना जाता है कि रीछ तलवे चाटकर आदमी के प्राण लेता है। रीछ खून चूसता है। आदमी ठंडा होता जाता है। रीछ के सामने आदमी का क्या बस? जब ताक़त ही निर्णय हो तो हिम्मत और हिकमत भी खड़ी रह जाती है।

सालिगराम के हाथ में भैंस हाँकने लायक़ लाठी तो ख़ैर पहले भी नहीं थी इन दिनों तो उसकी अक़ल भी जवाब देने लगती है। चुगली, चालाकी, चोरी, चकमा पहले भी चलता रहा है पर अब तो यह सब अँधेरे में साँप-सा बे-आवाज़ सरकता है जाने कब कहाँ किसको कौन डस ले उसका दिन अलाव को आँच जुटाने अथवा ख़ख़ोरने में बीत रहा है। कभी-कभी तो लगता है कि जाने कितने जन्मों से वह राख़ कुरेद-कुरेद कर ही घूरे पर फेंकता रहा है।

आज भी सबेरे कुछ जल्दी ही लाइन में लगने पहुँचा था पर तब तक तो सैकड़ों लोग आगे लग चुके थे। क्रतार में एक सीध...जैसे पैरों में काठ कसकर खड़ा कर दिया हो। कम्पनी के मालिकों की ओर से हल्ला-गुल्ला की मनाही है। इस समय साहब लोग सोते हैं।...बस उनके कुत्ते घूमते हैं चहारदीवारी के भीतर। लार टपकाते...इधर-उधर कुछ सूँघते हुए। कोई आदमी अगर ग़लती से भी भीतर प्रवेश कर ले तो बोटी-बोटी चीर डालें। ये बाहर से मँगाए गए हैं। सालिगराम ने सुना है कि एक कुत्ते पर इतना ख़र्चा होता है कि दो परिवार पल जाएँ। ये ज़रूर है कि इन्हें कोई बहला-फुसला नहीं सकता और इन पर संविधान को कोई दफ़ा भी लागू नहीं होती।

लाइन से ज़रा भी ऊँचे सुर में बोलनेवाले का नाम काली सूची में डाल दिया जाता है फिर वह तो क्या उसके कुनबे से भी कोई भीतर दाख़िल नहीं हो सकता। इसीलिए लोग समय गुज़ारने के लिए भी आपस में बातचीत नहीं करते बस फुसफुसाते हैं। पानी पेशाब तक के लिए इजाज़त संकेतों से माँगी जाती है।

क्रतार में लगे हुआँ को कोई हुकुमत नहीं मिलनेवाली...बस यही कि

रजिस्टर पर नाम चढ़ गया तो महीने में दस-पाँच दिन का काम मिलने की उम्मीद बन जाती है। आधा-अधूरा पेट में पटककर टूटे-फूटे परिवार को जिलाए रखने की जुगत का आसरा रहता है। कम्पनी में पहाड़ खोदने या मुरम सकेलने का काम है तो हाड़-तोड़ पर इसके चाहने वालों की भीड़ लगी रहती है—मर्द, औरत, बच्चेनुमा चेहरे भी। पेट दिखाते बजाते...समूह के समूह। सब भय के आत्मानुशासन में...

दरअसल इस गाँव को कम्पनी ने गोद लिया है। कम्पनी आने से पहले यहाँ सिर्फ सूखे पहाड़ और खेत भर थे। एक पतली-सी नदी भी तीन ओर से गाँव का घेरा लगाकर बहती रहती थी। संपन्नता नहीं थी...बस गुज़र बसर होती आई है पीढ़ियों से। खुद मुख्यमंत्री ने अपने मुँह से घोषणा कर गाँव को कम्पनी की गोद में पहुँचाया था। कहा था कि गाँव में न अकाल रहेगा न गरीबी। कम्पनी का आना सौभाग्य कहा था गाँव का। शुरू-शुरू में ऐसा कुछ लगा भी था पर अब?

सालिगराम क्रतार में था और खिड़की खुलने की उम्मीद में कभी एक कभी दूसरे पैर हो रहा था कि अफ़रा-तफ़री शुरू हो गई। हुड़दंग अधिकतर पीछे से आरंभ होता है...। हो हल्ला, धक्का-मुक्की में पीछे के जोर-जबर आगे आ ठसे। आगे के कमज़ोर क्रतार से बाहर हो गए...अब उनके किसी नंबर को पाने की संभावना भी समाप्त थी। हालात बिगड़ते देख कम्पनी के कारिंदों ने वर्दियाँ बुलवा लीं। डंडों से नियंत्रण की स्थिति तो बनाई पर क्रतार फिर भी रुक-रुक कर टूटती रही। व्यवस्था वाले स्वयं ही किसी को खिड़की पर ले लेते।

क्रतार से बाहर हुए सबसे पीछे खड़े होकर सालिगराम में बाट जोहने का न साहस बचा था न क़वत। घर लौटने के बजाय वह कंधों पर खेस लपेट पहाड़ी चढ़ा और सूरज डूबने के साथ झोली-भर झरबेरी के बेर लिए लौटा। पाँच प्राणियों के पेट की आग में झोंकने के लिए कुछ-न-कुछ तिनका पत्ता तो चाहिए ही। इलाक़ा का इलका तीन साल से अकाल झेल रहा है। पहली साल उधार-सुधार और बचे-खुचे से काटी। दूसरे साल से गहना-गुरिया बेच जमीन का मुँह भरा और तीसरे साल तो ख़ैर सूनी ही छोड़ दी। जब बीज भी न लौटे तो और क्या करे किसान? अब ज़मीन औने-पौने बिक्री और ज़रूरत के मुताबिक़ कम्पनी ने ख़रीदी। लोगों के पास काम न था और कम्पनी का कारोबार दिन दूना रात चौगुना होने लगा। कम्पनी के साथ-साथ लगता था कि रात भी फैल उठी है।

अभी आठ भी न बजे होंगे पर रात गाँव में सांय-सांय डोलने लगी थी। गली के मोड़ से कोई भूरी-सी काया चोर चाल में सालिगराम की ओर चढ़ी आ रही थी। पहले तो वह सतर्क हुआ फिर उसने खुद को ढीला छोड़ दिया कि—

घर में चूहे दुलत्ती खेलते हैं, चोर-चकार क्या खोंस लेगा?

राम राम दद्दा!

आवाज़ के सहारे सालिगराम ने पहचाना कि सरपंच है। बास नहीं सुहाती उसे सरपंच की...पर क्या करे? कम-से-कम अगले चुनाव तक तो उसे लदे ही रहना है। गाँव अकाल-दर-अकाल भुगत रहा है और इस सरपंचड़ा को सदा अपना फ़ायदा और चुनाव दिखता है। इसने गाँव को तो जातियों में बाँट ही रखा है। घरों में भी दीवारें खिंचवा दीं। खुद सालिगराम के बेटे जै सिंह को ही जाने क्या पट्टी पढ़ाई कि गू गोड़ना पड़ रहा है परिवार-भर को। वैसे अपना ही दाम खोटा हो तो परखने वाले पे क्या दोष धरा जाए?

सरपंच गमगमाती ऊनी शाल सहेजता अलाव पर सामने आ बैठा—का होय रहा है दद्दा?

“बख़त काट रये हैं” सालिगराम ने मरे मन से उत्तर दिया।

“तिहारे घर मन-भर ज्वार पहुँचायबे का बोल गया था, आय गई का?”

सालिगराम के भीतर कुछ भक्क से जला—अच्छा! तो कूटन उसी की भिजवाई ज्वार से बना था! ...पर बख़त की टेढ़ और अपनी घरवाली रामसिरी की चतुराई भाँप चुप रहा। समझ गया कि रामसिरी ज्वार के साथ बेर कूटकर पकाते हुए अकाल और भूख के साथ युद्ध को कुछ लंबा खींचना चाहती है...शायद अगली फसल बने...दिन बहुरें। फिर वह इस गुत्थी में उलझ गया कि सरपंच ने दाना क्यों फेंका है? सभी जानते हैं कि पूरा हरामी है ये मुखिया। ऐसा कुछ भी नहीं करता कि कोई मतलब न सधे। गाँव-भर को यूँ गांस रखा है कि कुछ कहकर कोई बैर बुराई भले मोल ले...इसका बिगाड़ नहीं कर पाएगा। चौपड़ ही ऐसी है...कम्पनी तक से हिस्सा बैधा है इसका। बोला, “नैक बैठो भइया! दुकान खुली होय तो बीड़ी ले आऊँ! वैसे सालिगराम की जेब में जतन से बचाई गई चार छह बीड़ियाँ अभी सुरक्षित थीं और वह यह भी जानता है कि सरपंच बीड़ी नहीं सिगरेट पीता है।

चुनाव के टैम महीने भर दारू बँटवाई थी सरपंच ने। अब तो कंपनी साहबों के साथ अँगरेजी पर हाथ फेरता है। चर्चाएँ तो इसकी लँगोटी पर भी हैं...इसके खानदान में रखैलों का चलन रहा ही है। इतना तो सालिगराम भी जानता है कि इसके बाप को अफीम और औरत रोजाना की ज़रूरत थी। अब जमाना बदल गया है कि इसके बाप-दादों की तरह सीधे झपट्टे की बजाय पोट पुचकार कर मारता है।

सालिगराम अनमना-सा खड़ा हुआ तो सरपंच ने हाथ पकड़ बैठा लिया, “अरे दद्दा! तुम बड़े बूढ़े इस बख़त अँधेरे में कहाँ ठिब्बे खाओगे। है ना मेरे

पास। तुम्हारी ई तो है ये—सरपंच ने जेब से सिगरेट की पैकेट निकाल सालिगराम की ओर बढ़ा दी—लेव! दोनों भाई संगसाथ पियेंगे।

सिगरेट सुलगाकर धुँआ गुटकते सालिगराम की आशंका और घनी होने लगी कि कोई जाल तो फिंकना ही है।... खैर अभी नहीं तो फिर कभी उच्चारेगा कि क्या चाहता है? सुट्टा मार सालिगराम ने अलाव की आँच कुरेदी।

सरपंच के ओठों पर सिगरेट का तिलंगा लहका, “दद्दा! सुना है कि मोड़ी का ब्याह अखतीज पर बन रहा है। जै सिंह बता रहा था कि अगली साल गुरु जाने कौन राशि बैठेंगे सो पूरी साल बिना लगनसरा की है।”

बेटी का ब्याह हर पिता की तरह सालिगराम की भी दुखती रग है। अट्टारह साल तक वह बेटी को बच्ची ही समझता रहा फिर रामसिरी के कोंचने पर घर की ओर निगाह दौड़ाई तब तक अकाल आ गया। इन तीन सालों में बेटी ताड़ हो गई है। कम्पनी को खेत इस आस में सौंपा कि ज़मीन देने वाले परिवार से एक को नौकरी में लिया जाएगा। नौकरी पाकर जै सिंह न्यारा हो गया। न्यारा पूत पड़ौसी दाखिल। माँ-बाप, भाई-बहिन के खाली पेट की सुध नहीं लेता तो ब्याह का क्या हीला करेगा? ज्वार की कूटन से पेट की आग पर कुछ राख जमी थी कि सरपंच ने ब्याह का जिक्र कर फूँक मार दी। सालिगराम जल्दी-जल्दी सिगरेट धोंकने लगा।

सरपंच ने बात का सिरा फिर बढ़ाया, “ब्याह जोग बेटी को गोबर के टीके से ही सही, बिदा कर देना चाहिए...समय खराब है।” बड़े जतन से घाव में चुभोई गई सींक से सालिगराम बिल बिलाकर रह गया।

“कछू हूँ हाँ नहीं करी दद्दा तुमने?”

“काये की?”

“यही ब्याह की चर्चा जै सिंह ने करी मो से सो कहा मैंने...।”

“मो से तो जिकर नहीं करा।”

“मोसे करा तो का मैं कोई गैर हूँ?...स्यात् तुमसे कहबे की हिम्मत न परी हो। जे भी कहता था कि बन पड़ेगा सो वो भी लगाएगा ब्याह में।”

सालिगराम ने साँस भरी, “देखई रये हो। घर-घर में खायबे के लाले परे हैं।” लगा कि जैसे गैर के आगे जाँघ उघड़ गई हो।

सरपंच ने हूँका भरा, “तुम तो फिर भी ठीक हो। कई घरों में तो सात-सात दिन अन्न के दरसन नई मिलते। मोसे जितना बन पड़ता है कर रहा हूँ। रोज-रोज अफ़सरों तक दौड़ भाग करता हूँ कि राहत खुल जाए पर वो कहत हैं कि बजट नई है। पच्चीस परसेंट पै बजट हो जाता है पर फिर दूसरे महकमों का मुँह भरो। इतनी बेईमानी मैं नहीं साध पाता। ले देकर कंपनी का सहारा बचता है।

मरने-मारने पर उतारू होकर मैंने कंपनी से पानी का राशन कार्ड बनवाया। नहीं तो सबको प्यास से मरते गाँव छोड़ना पड़ता। जानत हौ कंपनी का एक बोतल पानी दस रुपैया में बिकता है। पाँच की भी लागत मान लो तो एक बाल्टी से कम कौन लेता है, मैंने एक-दो बाल्टी बढ़ाकर ही बनवाए हैं कार्ड। हिसाब लगाओ तो तीन-चार सौ का पानी हर घर खरच करता है। क्रिस्मत की बात है कि यहाँ के ढोर तक मिनस्ट्रों, कलक्टरों वाला पानी पी रहे हैं। कम्पनी पैसा न लगाती तो किसे पता था कि हमारी ज़मीन में पानी नहीं अमृत बह रहा है। देस तो का बिदेस तक में बिक रहा है हमारा पानी।

“पर भैया! गये सोमवार चार-पाँच लड़के आए थे। कह रहे थे कि कंपनी के गहरे कुँओं ने हमारे कुएँ सोख लिए हैं। कंपनी सिर्फ हमारा पानी ही नई बेचती, बिससे शराब भी बनाती है। पहाड़ खोदकर मिट्टी बेचती है...गिट्टी बेचती है। कह रये हते कि करोड़ों लगाकर अरबों कमा रही है कम्पनी।—सालिगराम के मन में यह बात बैठ गई थी कि दाल में काला तो ज़रूर है पर वह काला क्या और कैसे है यही पकड़ में ना आ रहा था।

सरपंच हँस पड़ा, “हाँ सुनी है कि आये हते कछू लफंगे। गाँव को बरगलाय रहे हते कम्पनी के खिलाफ। का बतायें दद्दा। इनें कछू काम-धाम तो है नई। माँ बाप की दम पै इस्कुल, कालेज कर आए। खाय, पीवे, पहरबे को चाहिए फस किलास। नौकरी है नई...मेहनत का काम कर नई सकत। कपड़ा पै दाग न आए बो काम चाहिये। तो खाली बैठा बनियाँ सेर बाँट ही तौले। आय गए जनता को भड़काने। कहो काऊ दिन जुलूस भी निकल जाय गाँव में। जे धंधा भी चालू है गया है आजकल।

हाँ एक कारन से और मैं इतें आया। कम्पनी कों थोड़ी-सी जगह चाहिए। आयबे जायबे वारन कों कोठी बनेगी।...रेस्टहाउस यानी आरामघर। तुम्हारा खेत मौक्रे को है। अच्छे पैसे मिलेंगे। जै सिंह ने कही कि तुमसे पुछूँ...आधा खेत निकार देव। ब्याह निपट जाएगा और कछू हाथ पास बचा रहेगा।”

सालिगराम के दिमाग में बिजली कौंध गई—ओ ये मतलब है इसका। जीभ पर आता करा उत्तर काबू में कर बोला, “मतलब! जो बची है बिससे हू हाथ धोय बैठें। माना कि खेती फायदे की नई रही। आमद सुन्न है और लागत ज़्यादा। खाद, बीज, जुताई, गहाई...पुरती नहीं। कोढ़ में खाज साल दरसाल अकाल। पर नई भैया! हम ना बेचेंगे। धरती है तो आस तो बची है।”

“सोच लेव!...सलाह कर लेव! कम्पनी का का है? कहीं और देख लेगी...पर मौक्रे रोज-रोज नहीं मिलते।” कह राम-राम कर सरपंच उठ गया।

चला तो गया सरपंच पर सालिगराम के सोच पर चूहा छोड़ गया। खटिया

पर लेटने के बाद भी वह मन में बार-बार फुदकता और किसी खुटके की आहट पाते ही दुबक जाता। ब्याह...अकाल...बाँझ होती धरती...कम्पनी...दलाल। उड़ते-उड़ते सुना यह भी गया है कि कम्पनी में किसी बड़े मंत्री का भी हिस्सा है। रात करवटें बदलते बीती सालिगराम की।

सबेरे-सबेरे जै सिंह खाट की पाटी पर आ बैठा, “सरपंच आए हते का?”

“...।”

“कछू बात करी होगी...।”

“खेत के बारे में कही हती। दलाल है ससुरा।”

“हमें का करना काहू की दलाली से। हमें तो अपना मतलब निकालना है।”

“अपने-अपने मतलब से ई दुरगत है रही है। कम्पनी सब डकारे जात है—खेत...पानी...पहाड़।”

और ये स्कूल को बनवाय रहा है। सड़क किसने बनाई? अस्पताल कौन ने खोला? मैंने...तुमने या सरकार ने? सरकार तो दिवालिया है रई है। कम्पनी रोजगार तो दे रई है...थोड़ा ही सही।” जै सिंह तीखा होने लगा।

“जै सिंह! मोय तो जे लगई रई कि जौन दिन हमारे सोत सूख जाएँगे तौन दिन जे कम्पनी हमें मरते बिलबिलाते छोड़ जाएगी। चूसे भये आम की नाई।”

“तब की तब देखी जाएगी अबई तो मोंड़ी का ब्याह करना है। अच्छे पैसा मिल रये हैं तो काये नई बेच रये खेत?”

बाप बेटे को बतियाते देख रामसिरी भी पास आ गई। बेटा की चिंता में वह भी घुल रही है। कुछ क्षण उसने बाप-बेटे के चेहरों पर निगाह घुमाई और बोली, “जमीन तो अब नई बिकेगी।...बस्स। जो होयगा देखेंगे।”

गाँव में कोई शोर-सा उठने लगा था सो अपना सुर कुछ ऊँचा करते जै सिंह ने पूछा, “जमीन से मिल का रहा है?...सूखी पड़ी है।”

गाँव का शोर और बढ़ने लगा। पानी पर हर दूसरे तीसरे दिन तकरार होती है। एक-एक लोटा पानी के लिए लोग कारिदों से चिरौरी, आपस में तकरार करते हैं। हाथापाई तक होने लगी है। कुछ लोग गुस्से में थे कुछ तमाशबीन बने कम्पनी की ओर लंबे-लंबे डग भर रहे थे। बेटे का सामना करने से बचता सालिगराम भी खटिया से खड़ा हो गया। कम्पनी से सामना तो उसे भी करना ही होगा।

बाधा-दौड़

पिछले कुछ सालों से गोमती लगातार छीज रही थी। राकेश में काफ़ी बदलाव हो गया था, सालों बाद जब वह घर का रुख करता तो घरवालों को उसे चीन्हने में कुछ देर लग जाती थी। जो बेटा छाती पर पत्थर बाँध पँजीरी, गुटउआ तथा टीन की बकसिया के साथ पढ़ने के लिए तहसीली क्रस्वे भेजा था वह जिला पार करते हुए राजधानी जा पहुँचा।

गोमती कोई जाहिल माँ नहीं। वह आज्ञादी के आसपास की संतान है—तब उसके गाँव में कलकत्ते का बड़ा भय था—छह छह पैसे चल कलकत्ता। यानी छह पैसे हों तो कलकत्ता चलो, वहाँ से लौटना नहीं होता था आदमी का। कहते थे, वहाँ की औरतें जादू जानती हैं—बंगाल का जादू...आदमी को मेंढ़ा बनाकर बाँध रखती हैं, या तोता बना सोने चाँदी के पिंजरे में टाँग लेती हैं। कलकत्ते का जादू तो आज्ञादी के साथ ख़त्म हो गया अब मरी राजधानी का बढ़ता जा रहा है।

कलकत्ते के डर से गोमती को स्कूल भी भेजा गया था ताकि वक्रत पढ़ने पर चिट्ठी-पत्री के सहारे जादू में संध मार सकें। उसको दर्जा एक में भरती कराते समय कसबी की लँहगी-लुगरा और पोपलीन का पोलका सिलवाया गया था—वह आठवें साल में थी कि जतन से इस्तेमाल करते हुए भी लँहगी, जब पिंडलियों से ऊपर उठती घुटने छूने लगी तो माँ बाप ने पढ़ाई स्थगित कर विवाह का विचार करते हुए नाते रिश्तेदारों सहित नाई ठाकुर को भी योग्य वर की तलाश में लगा दिया। नाई ठाकुर कंचनपुर से एक योग्य व गुणवान पुत्र का लेखा-जोखा ले आया जिसके हाथ हँसी खुशी गोमती का कन्यादान हो गया। उस समय पं. जभार लाल पंत प्रधान होकर राजधानी में रहते थे। कलकत्ते का जादू बिखर गया था।

शास्त्रों में सात स्वर्गों का हवाला मिलता है—तब लोग भरोसा करते थे कि वे होते भी हैं। वहाँ देवता रहते हैं तथा अपने यार दोस्तों, नाते रिश्तेदारी में जिजमानों के ज़रिए आते जाते हैं। राजधानी के जिन दो एक लोगों के नाम लोगों

ने सुन रखे थे उनका आना-जाना भी हवाई जहाज से सुना था अतः यह धारणा आम थी कि राजधानी भी सात स्वर्गों में से ही कोई एक होती है।

राकेश के राजधानी में होने की खबर गाँव ही नहीं असफेर के भी बच्चे-बच्चे को थी। लोग मेहनत की रूखी-सूखी खाते हुए उस पर गर्व कर लेते थे।

बहरहाल...। इस बार राकेश दो साल बाद अपनी जन्मभूमि पर धँसा था और इतना बदल चुका था कि सिवान से घर तक लोग आँखें व मुँह फाड़े उसे देखते भर रहे, न कुछ पूछने की हिम्मत जुटा पाए न कहने की। असमंजस ज़रूर रहा कि पीठ पर लद्दू झोला बाँधे जो आदमी-सा रास्ते से गुज़र रहा है, उसकी संभावना राकेश होना हो सकती है। अलबत्ता कुछ पिल्ले-पिल्लियों का कुकुर समूह अगवानी करता हुआ अवश्य आगे-पीछे हो लिया था। राकेश भी कभी-कभार उनकी ओर सीटी बजा देता था कि अपने ही हो...भूँको।

उसकी पीठ पर रिबन से बँधी चोटी झूल रही थी। दाढ़ी सफ़ा चट और एक कान में बूँदा था। दाहिनी कलाई में काले रंग का कड़ा जैसा कुछ...आँखों पर मत्स्याकार चश्मा। कमर से एड़ी तक पैंट और चूड़ीदार पायजामे के बीच का कोई परिधान और देह पर क्रमीज़, कुर्ता व बनियान के मेल से बना कोई वस्त्र था।

इस क्राफ़िले का शोर सुन, क्या है? की मुद्रा में गोमती देहरी तक आ पहुँची थी और खोजी आँखों से कुछ जानने की चेष्टा में थी कि राकेश सामने पहुँच गया। कैमरे के विभिन्न कोणों की तरह उसने गर्दन यहाँ वहाँ फिक्स करते हुए अपनी माँ को देखा और बोला, “ममी।”

गोमती सहम गई, “क्या चाहिए?”

“ओ तुमने पहचाना नहीं?” उसने लाड़ के साथ माँ को अंक में भर लिया। गोमती घबराकर कसमसाने लगी।

“ममी। मैं...राकेश।”

गोमती ने पहले स्वयं को उसकी बाँहों के घेरे से विलग किया फिर एक क्रदम पीछे हट सामने खड़े बिजूके को संदेह और गौर से देखा, अरे तैं। दो बरस में...जे कैसी हुलिया बनाम राखी है?... “क्षण-भर में ही गोमती का चेहरा फूल हो उठा, पर तुरंत ही जैसे घाम से कुम्हला उठा हो, “हमारी नहीं, बहू की खबर तो लेता।” गोमती की आँखों से आँसू चूने लगे...गला रूँध गया। वह बेटे को अंक में भरने का साहस अभी भी न जुटा पा रही थी। लगता था कि कुछ है जो बीच में रुकावट बन ठहर गया है।

राकेश के चेहरे पर खीझ तैर आई। काले चश्मे के पीछे से निगाह भर माँ को घूरते हुए उसने चश्मा उतारा और साफ़ कर फिर पहन लिया। वह अंदर-

ही-अंदर शर्मसार था—इस ढब की माँ, इस होड़ भरे युग में चलने लायक है?...इसे माँ भी कौन कहेगा? दादी से भी गई बीती हो रही है। स्मिता की मम्मी शायद पैंसठ के आसपास होगी पर लगता है, बुढ़ापा छू भर सका है उन्हें। इसकी उमर पचास के लगभग है और शरीर ही नहीं मन पर भी साठ सत्तरपना ओढ़े खड़ी है। अच्छा है, वहाँ का कोई देखनेवाला नहीं अन्यथा इसका प्यार करता देख घिनाने लगता। आँसू बहा और पोंछ रही है...नाक सुड़क रही है...ये भी कोई मैनर है। यहाँ के लोगों को सौ साल के लिए यू.एस.ए. के हवाले भी कर दिया जाए, तब भी यहाँ की माँ बहनें ऐसी ही बनी रहेंगी। इनकी चमड़ी की जगह दूसरी चमड़ी लगा दी जाए तो भी ये मॉडर्न हो ही नहीं सकतीं...पोस्ट मॉडर्न का तो सवाल ही नहीं उठता। इन पर समय और धन जाया करना व्यर्थ है। उसकी उल्टे पाँव लौटने की इच्छा हुई जिसे दबा, पौर पार करता हुआ वह आँगन तक आ पहुँचा। गोमती भी ममता की रस्सी से बँधी खिंची आई और बैठने को खटुलिया उढ़का दी। पाटियों और मूँज पर मैल के स्पष्ट धब्बे और परतें पौढ़ी थीं, जिनसे उठती गंध नथुनों की राह दिमाग़ पर चढ़ने लगी। राकेश की स्मृतियों में यह गंध अभी तक कोई कोना पकड़े हुए है...इस घर की खास गंध, जिसमें माँ बाप, भाई, बहन दादा दादी और पत्नी के हँसी-आँसू और पसीने से लेकर गाय भैसों की लार, गोबर मूत्र तथा नीम पर बसने वाले पखेरूओं की बीट तक शामिल है। इसमें वह गंध भी आ जुड़ती है जो पुरवैया, पछैयाँ और परवतिया हवाएँ जाने कहाँ कहाँ से बटोरकर इस आँगन में छिड़क जाती हैं। केवल इसी घर में नहीं, गाँव के हर घर में इसी तरह की खास और साझा गंध है।

शायद राकेश को भी यही गंध फेफड़ों में भरने की चाह उठती है, कभी कभी। जाने क्यों राजधानी के भभूकों पर छिड़की खुशबू से महकती हवा में उसे कभी-कभी प्राणवायु की कमी का अंदेशा होने लगता है...साँस ठहर-ठहर जाती है। गो कि राकेश अब वह नहीं, जिसने माँ के अनधुले धोती, पेटीकोट ओढ़कर ऋतुएँ गुज़ारी हैं। अब वह अपने लद्दू झोले में रखी चैकबुक के एक कागज़ से घर ही नहीं मुहल्ले-भर का मौसम बदल सकता है। बदलना उसकी नैतिक तो क्या सिविक ड्यूटी है।

सोचने के इस क्रम में मैल और गंध के मेल से उठती उबकाई कुछ सहने योग्य बनी। एक विचार आया कि झोले से स्त्रे की शीशी निकाल अपने आसपास सुगंध फैला ले पर रुक गया। ऐसी सुगंध खुले आँगन में कब तक ठहर पाती? हवा और धूल तुरत सोख लेती उसे।

राकेश की पत्नी माथे तक घूँघट लिए उखड़ी कलई वाले गिलास में पानी ले आई थी—रुखा चेहरा, उलझे बाल, खुरदरी हथेली। पैरों की ओर निगाह घूमी

तो बिछियों में कालोंछ जमी दिखी। उसके आगे दो औरतें खड़ी थीं—मूर्ति की तरह...मूक। दोनों को दो साल बाद देख रहा है...।

गोमती ने खँखार कर गला साफ़ किया, “चाय पियेगा या शरबत या...”

“या...?”...उसने मुस्कुराने की कोशिश की।

“या...दूध।”

“इस समय दूध पियूँगा?” वह खीझना चाहता था पर मुस्कुराकर टाल गया।

“दूध तो कभी भी पिया जा सकता है।”

राकेश ने चुप होकर पानी के गिलास की ओर हाथ बढ़ा दिया। गिलास सौंप पत्नी पुनः घर भीतर गुम हो गई...चूल्हे के निकट खटर-पटर होने लगी थी।

“ददू कहाँ है?...पानी की चुस्कियाँ भरते राकेश ने माँ से पूछा।

“छुट्टन के साथ मण्डी करने गए हैं। ब्याह की जुगाड़ करनी है, छुट्टन की। कल लौटेंगे, तेरे आने की खबर होती तो न जाते। तेरा कोई अता-पता नहीं मिलता कि कहाँ है। है भी या...”

“ममी तुम बात को बीच में क्यों छोड़ देती हो? या लगाकर। और देखो दुनिया बदल रही है, बहुत बदल गई है...तुम वहीं की वहीं पड़ी रहना चाहती हो।” राकेश के स्वर में तलखी घुल गई।

“वहीं कहाँ रहे हम? अम्मा से ममी तक तो तूने ही बदल दिया है। खैर, पहले कुछ खा पी ले। बहू। ज़रा पकौड़ियाँ निकाल लेना।” गोमती ने आवाज़ ऊँची कर दी।

“मेरे पास बिस्कुट है।” वह झोला खोलने लगा।

“और क्या-क्या है, तेरे झोले में?” गोमती मुस्कुराती हुई बगल में बैठ गई।

“दददा बीड़ी पीते हैं ना। सो लाइटर है, शैविंग बाक्स लाया हूँ...नाइयों के उस्तरे साफ़ नहीं होते। तेरे लिए शैम्पू, रिंग बगैरा/छुट्टन का नेल कटर, स्प्रे मिस्ट। यही कुछ है, यात्रा में बोझ नहीं लादा जा सकता ना। इम्पोर्टेड चीज़ें हैं सब।”

गोमती हँसी, “मेरी तो कुछ समझ में ही नहीं आया कि ये क्या हैं और क्या होगा इनका?”

“कुछ नहीं बस यूज़ एंड थ्रो यानी इस्तेमाल करो और फेंक दो। आज के लिए यह एटीट्यूट ज़रूरी है। अब देखो यह घर वही पुराना है, सड़ा-सा फैला फैला। अरे भई, गाँव में फ़ार्म हाउस बनाकर भी तो रहा जा सकता है...पैसा मैं दे दूँगा।”

“बहुत रुपया है क्या तेरे पास।”

“मेरे पास ही समझो।...ममी के पास है। मतलब जिसके साथ रहता हूँ

उसकी ममी के पास। देखो। मैं कुछ छिपाना नहीं चाहता।”

“समझ रही हूँ मैं”, गोमती अपने माथे की लकीरों में डूबने लगी।

“नहीं। पूरी बात समझो। वे लोग सिर्फ़ एक बच्चा चाहती हैं, उस नाम के साथ जो सोसायटी में चल सके।”

“और तू अपना कुल बेचेगा?”

“यह बेचना नहीं एडजस्टमेंट है। यानी अदला-बदली। दोनों पार्टियों की ज़रूरत पूरी हो जाती है।”

“अच्छा?” वह मुस्कुराई। ...इसके बाद दोनों तरफ़ से फैंका-फाँकी भी होगी।”

“मतलब?” वह चिहुंका

“कुछ नहीं। बहू कुछ बन गया हो तो ला दे”, कह गोमती खड़ी हो गई। बाहर खेतों से खूँटे पर आई गाय रंभा रही थी।

आदि पाप

भोपाल की तरफ़ से चलकर दिल्ली की ओर जानेवाली ग्यारह बजे की गाड़ी निकल गई थी। इसी समय के आसपास विपरीत दिशावाली गाड़ी भी है। कभी-कभी दोनों एक साथ स्टेशन पर आ जाती हैं तब कुछ देर के लिए इतना शोर मचता है कि स्टेशन की चादरों वाली छत के नीचे दुबके, ऊँघते पखेरू चौकने हो पर फड़फड़ाने लगते हैं। सीढ़ियों पर चढ़ने उतरनेवालों की धकापेल में धमाल मच जाता है।

दो दिशाओं से दो गाड़ियों के मुसाफ़िरों को ढोने के लिए वाहनों का टोटा हो जाता है। नेता और अफ़सरों के लिए तो सरकारी वाहन लगे होते हैं और ग़रीब गुरबा अधरतिया वाला ड्योढ़ा, दुगुना किराया बचाने के लिए स्टेशन के ओने-कोने या सड़क का किनारा छँककर बोरी फट्टा बिछा रात काटने का जुगाड़ बिठाते हैं...असुविधा उन्हें रहती है जो मामूली हैसियत में होकर शहर में अपना ठिकाना या दोस्तों, नातेदारों की चौखट छूने के लिए कंधों पर बैग या हाथों में अटैची फँसाए, भट-भट करते टेंपुओं, तिपहियों या भुर्र-भुर्र करती मिनीबसों में धँसने और ठँसने की जुगत में घंटों सड़क पर खड़े या चहलकदमी करते रहते हैं।

ऑटोवाले तो दुगुना किराया लेते ही हैं। उधर से खाली लौटना पड़ेगा बाबू जी! यह अर्धसत्य उनका हथियार है ही...तो अधियाती रात के इस आधा पौन घंटे में इतनी पों-पों, में-में, चीखपुकार आपाधापी मचती है कि कुछ न पूछो।

खजेरा का धंधा भी ख़ूब चटकता है इस बख़्त। दहाई-भर आमलेट इस टैम के लिए पहले से बनाकर रखता है और भुर्जी भी अधसिंकी कर लेता है ताकि तवे पर थोड़ा-सा चला के ही तैयार हो जाए। दरअसल खजेरा की साख़ उसके मसाले और इस्तेमाल होनेवाले चोपर के कारण है। बचत थोड़ी कम भले हो पर माल की कौलिटी से कोई समझौता नहीं करता वह। डेली पैसेंजर यहाँ खड़े होकर नहीं खाते...पैक करा घर ले जाते हैं। यहाँ धंधा करते पंद्रह बरस बीत चुके हैं खजेरा को; किसी ओर से कोई उलाहना नहीं आने दिया उसने। पुलिसवालों की

त्यूरी का ध्यान रखा तो ठेकेदार से यारी। समय-समय पर जितने भी दादा उभरे बजरिया में, उनसे सलाम बंदगी का सिलसिला भी ढीला न होने दिया...इस ठौर झाड़ू लगानेवाले जमादार को भी वह एक अंडे की भुर्जी रोज़ चखाता है।

खजेरा के ठेला लगने का समय है दिन डूबाडूबी से आधी रात खँदने तक। सवा बजे एक्सप्रेस गुज़रती है...उसके कुछ पहले शटल। एक्सप्रेस के पीठ फेरते ही खजेरा अपना ठेला समेटना शुरू कर देता है। सामान सट्टा समेटने, प्लेटों की धोवाधाई, तवा बटलोई की पोंछ-पाँछ होते-हवाते दो बज ही जाते हैं। फिर तो गर्मी के सीज़न में दो घंटे और सर्दी की चार घंटे रात ही हिस्से में आ पाती है।

शटल पास होते ही खजेरा थोड़ी फुर्सत पाकर अंडों की टारा बटौरी में लगा था कि वह अपनी हाथ सायकिल ढरकाता आया, “और क्या जलवे हैं खजेरू?”

“अल्ला दे रहा है भैया, चुगने खाने को।”

“एक फड़फड़ाता आमलेट तो बना दो अंडे का...और एक गिलास बढ़ा दे ज़रा साफ़ हाथ मार के।”

गिलास हाथ में आते ही उसने गद्दी के नीचे से पौवा निकाल आधा उँडेल लिया गिलास में...फिर आँखें कुछ अधमुँदी बना किसी देवता के नाम कुछ अस्फुट-सा बुदबुदाते हुए उँगलियों द्वारा शराब की चंद बूँदे आसमान की ओर उछाल गिलास मुँह से लगा दो-तीन घूँट में ख़ाली कर दिया। खजेरा तब तक आमलेट छोंक चुका था।

ख़ाली गिलास गोद में रख उसने सिगरेट निकाली और सुलगाकर जोर का कश खींचा, “क्या है खजेरू भाई! आदमी के संग कुछ नहीं जाता...यहीं पड़ा रह जाता है सब। अरे जब तक जिओ, ऐश से जिओ...है ना!”

खजेरू सहमति में सिर डुलाकर तवे पर करछुल चलाता रहा। स्टेशन की ओर अपेक्षाकृत शांति थी। एक्सप्रेस पकड़ने वाले ज़्यादा नहीं थे। भट्-भट् कर दिन-भर धुआँ उगलने वाले टेंपो भी थम गए थे। खजेरू के ठेले से दस क्रदम दूर नीम के पेड़ और उसी के पड़ोस वाले शीशम पर बसेरा करते पंछियों की फड़फड़ाहटें व आवाज़ें भी क़तई मंद थीं।

“बिज्जू भाई! थोड़ी देर पहले दीवान जी पूछ रहे थे तुम्हें...मिल गए?” खजेरू ने आमलेट की प्लेट के साथ सूचना थमायी।

“अरे यार! काये उस हरामी का नाम लेकर दारू और रात खोटी करता है। साला भिखारियों से भी कमीशन वसूलता है। स्टेशन इलाक़े के ढाई सौ रोज़ चाहता है। इतने तो मुझे भी नहीं मिलते दिन-भर कलैक्शन के। कोई दो पकड़ाता है कोई तीन। कोई-कोई तो खोल के दिखा देता है कि दिन-भर में पेट भरने लायक भी धंधा नहीं हुआ। आजकल लोग भीख कम देने लगे हैं। धरम-करम उठता

जा रहा है साला धरती से।” बिज्जू ने गोद में पड़ा गिलास सीधा किया और पूरा पौवा उड़ेल लिया।

आमलेट चाभते हुए बिज्जू ने दूसरा गिलास भी गटक लिया और सीकरी के साथ साँस खींचते हुए खजेरू से विमर्श की मुद्रा में आने लगा, “साली दारू में भी अब मिलावट होने लगी है। पूरा पौआ अंदर हो गया और सुरसुरी भी नहीं आई। देख लेना खजेरू भाई! एक दिन इंडिया में मिलावट ही मिलावट रह जाएगी...देस ढूँढना पड़ेगा। ...गलत बोलता हूँ क्या?”

खजेरू ने हाँ, ना कुछ भी न कहा। जानता है कि खाना पीना करते हुए बिज्जे यूँ ही दुनिया जहान कूदता रहेगा। यह भी डाल से टूटा पत्ता है जो इस शहर में आकर अटक गया है। उमर ही क्या है अभी? ...तीस के फेर में होगा, खजेरू से कोई दस बारह साल छोटा। जाने किस हादसे में दोनों पैर गँवा बैठा है? खजेरू ने कभी पूछा भी नहीं ...न उसने बताया कभी। बस इतना मालूम है कि भिखारियों का दादा है बिज्जू। अपनी सायकिल पर इसी तरह बैठा-बैठा इधर-उधर ढरकता रहता है। भिखारियों की अपनी बिरादरी से थोड़ा अलग रहन-सहन है उसका। साफ़ सफाई, ठीक-ठाक कपड़े यहाँ तक कि सवेंरे-सवेंरे चाय के साथ अखबार भी लगता है उसे। स्टेशन से लेकर बजरिया, यार्ड और आउटर तक के बीच इस इलाके में कहाँ क्या कैसे चलता है; सब जानकारी रहती है बिज्जू को इसलिए लुच्चों लफंगों की तो बात क्या, पुलिसवाले भी उससे पंगा लेने में कतराते हैं। बिज्जू का क्या? ...घर न द्वार। नीचे ज़मीन और ऊपर आसमान के बीच लुढ़कता एक मँगता ही तो है, नंगे से तो खुदा भी नहीं उलझता। उसका और क्या बिगड़ेगा? ...इधर तो धंधा ही खत्म हो जाएगा। किसने लिया...किसको दिया, सब हिसाब उँगलियों पर रखता है बिज्जू सो इस आग को कोई उँगली से क्यों कुरेदे?

“खजेरू भाई! तुमने उस मजूरिन को आसरा दे रखा है...? बड़े जिकरे हो रये हैं।” बिज्जू ने खाली शीशी गाड़ी से लटकते थैले के हवाले कर, दूसरा पौवा निकालते हुए पूछा।

“अरे भैया! ...मैं क्या आसरा दूँगा। एक को आसरा देने में ही टाँके ढीले हो रये हैं। हाँ तीन चार दिन से उधर पेड़ तले रात काट लेती है। दूसरे ठौर लफंगे परेशान करते हैं। बखत की मारी है बिचारी...मजूरन थी, भिखारिन हो गई। खाविंद ज़हरीली दारू पी के खुदा को प्यारा हो गया। एक नन्ही जान को छाती से चिपकाए फिरती है। मैं तो बस पाव-भर दूध जुटा देता हूँ, अल्ला के नाम पर...। और क्या है अपने बस में?”

“रहनहारी कहाँ की है...कौन जात?”

खजेरू हँस पड़ा, “तुमने भी खूब पूछी बिज्जू दादा। ...भिखारी की भी कोई जात होती है? ...मैंने उसका मुलुक भी नहीं पूछा। हाँ बोली-बानी अपने जैसी नहीं है।”

बिज्जू पुनः ढालने पीने में जुट गया। दूसरी शीशी खाली कर झोले में सरकाने के बाद बिज्जू की आवाज़ में थोड़ा-सा कम्पन और भारीपन आया, “अब लगा कि कुछ पहुँचा है कंठ में। सुन! छह अंडों का आमलेट बना...नई दो बना, एक चार का एक दो का...दो वाला उसको दे देना।”

“किसको?”

“अब ज़्यादा मत उड़ो मियाँ...हमें नाम तो मालूम नहीं तुम्हारी उस पड़ोसन का। अरे वही मजूरिन...भिखारिन।” बिज्जू हँसने लगा।

“देखो बिज्जू दादा...।”

“अरे ठीक है...रहने दे यार। अपना चरित्र प्रमाण-पत्र मुझे मत सुना। जानता हूँ। खाएगी तो उसका भी पेट भरेगा और बच्चे का भी। गलत तो नई बोलता मैं... ले, अपने पैसे काट! कम-बढ़ कल देखेंगे।” बिज्जू ने दस-दस के दो नोट खजेरू की ओर बढ़ा दिए।

खजेरू रुपए लेने के बाद स्टोव की लौ तेज़ कर अंडों, मसालों में उलझ गया। दारू पीने पर बिज्जू का निचला ओंठ थोड़ा-सा खिंचाव लेकर नीचे लटक जाता है। इससे यह संकेत तो मिलता है कि वह मजे में आ गया पर तिर्यक फाँक बनने पर दाँत चमकने से यह पता नहीं लगता कि मुस्कुरा रहा है या मिसमिसाता है।

पेड़ के नीचे मजूरिन का बच्चा चीखने लगा था। मजूरन भी बड़बड़ायी, “मर नासपीटी! दिन रात चींथती है। न होती तू तो कौन धरती बंजर रह जाती।” “खजेरू! इसकी गोद में बच्चा नहीं बच्ची है।” उँघते हुए बिज्जू ने भारी पलकें पेड़ की ओर उठाई, “तेरा दिमाग भी आउट है रे ...बच्ची को बच्चा बोलता है। इतना फरक भी नई जानता... ऐं...आदमी है के धतूरा...।”

खजेरू ने किसी उत्तर के बजाय प्लेट उसकी ओर बढ़ा दी। गूढ़ मुस्कान के साथ प्लेट हाथ में ले वह फसर-फसर खाने लगा। खजेरू एक आमलेट कागज़ में लपेट मजूरन को दे आया और अपनी दुकान समेटने लगा। लेट होने के कारण अब गाहकों की प्रतीक्षा बेकार थी। प्लेट साफ़ कर खजेरू को सौंप बिज्जू ने पानी पिया और अपनी हथ सायकिल कुछ दूर ले जाकर पेशाब की फिर पीछे सिर टिका सोने की कोशिश करने लगा। मजूरिन रेखा एक्टरनी बन उसके सपने में उतरने लगी थी।

अगले दिन बिरजू और मजूरन की मुलाकात प्लेटफार्म चार पर हुई जहाँ

वह सूखी, सिकुड़ी, सिसांयदी-सी बच्ची को दिखा-दिखा कर मुसाफिरों में करुणा जगाती भीख माँग रही थी। लोग बच्ची को देखते और मजूरिन पर निगाह लेते। मैली-कुचैली साड़ी में लिपटी मजूरिन के फटे और टूटे बटन वाले ब्लाउज से एक स्तन बाकायदा झाँक रहा था। पुष्ट स्तन के मुँह पर सूखी दूध की बूँद के ओर पास दो तीन मक्खियाँ चक्कर काट रही थीं। मैल की हल्की नीली-सी परत के बावजूद स्तन की सुनहरी चमक दिखाई पड़ रही थी। सुडौल चेहरे का तीखापन ज़रा ध्यान देते ही उभर आता था और वह अपनी ओर से निहायत लापरवाह थी।

जाने क्यों यह सब देख बिज्जू को हदका लगा, “साली दुकान खोल के बैठेगी तो चाटने के लिए कुत्ते झिमटेंगे ही झिमटेंगे”, वह मजूरिन को ढंग से डाँटना चाहता था। सीधे-सीधे परिचय का अधिकार न होने पर भी यह तो है ही कि उसके इलाक़े में भीख माँग रही है। परसेंटेज भले न दे पर उसे बिज्जू दादा की इज्जत का तो ध्यान रखना चाहिए। कोई ऊँच-नीच कर बैठे तो नाक बिज्जू की ही नीची होगी ना। इसका क्या? आज यहाँ है, कल कहीं और छाती खोल फिरने लगेगी। बिज्जू का मन तो यहाँ तक हुआ कि दो झापड़ खेंच दे उसको, पर काबू कर गया वह अपने को। रात को खजेरू के ज़रिए पहुँचा देगा उस तक अपनी नाराजी। अभी तो खजेरू ही उसका सरपरस्त माना जाएगा।

रात वह खजेरू के ठेले पर पहुँचा। ...अब्दी गटकी...आमलेट बनवाए...एक आमलेट बच्ची के नाम मजूरिन के लिए भी पर मजूरिन के बारे में जिज़्र करके जाने क्यों हिचकिचाहट बनी रही। असमंजस में उसने रोज़ की तरह कुछ गाड़ी ढरकाकर पेशाब की। पीछे सिर टिकाने से पहले एक नज़र पेड़ के नीचे फेंकी और रेखा को सपने में लेता हुआ उनींदा हो गया। रात में एक बार बच्ची के रोने पर वह चौंका भी था।

मजूरिन उससे रोज़-रोज़ टकरा रही थी क्योंकि बिज्जू को वहीं घूमते रहना है...पिछले छह साल से घूम रहा है यहाँ। हफ़्ते-भर में मजूरिन भी रम गई है इस जगह। ज्यों-त्यों पेट भर ही जाता है और खजेरू जैसा सहारा भी है तिनके का। दोनों ही आसमान की छत के नीचे हैं। दो दिन और बीते तो बिज्जू से सामना होने पर मजूरिन मुस्कुराने लगी। बिज्जू अचकचाकर हथपैडल पर जोर मार आगे बढ़ जाता। बिज्जू बचने की कोशिश करता और वह थी कि दिमाग़ पर सवारी गाँठने लगी थी।

बिज्जू धंधे में पूरा ध्यान न लगा पाता। उसकी रोज़ाना वसूली जो कभी ढाई सौ पार कर जाती और इस पर भी किसी माँगते के रुपया दो रुपया कम देने पर जो बिज्जू दादा माँ-बहन एक करते हुए कभी-कभी हाथ भी छोड़ बैठता था वही अब जो भी मिलता, उसे चुपचाप थैली में डाल लेता। वह दो सौ से नीचे पहुँचने

लगा, इधर हवलदार भी सौ से ऊपर वसूलने के लिए अड़ने लगा था। स्टेशन के माँगते खुद हैरान परेशान कि हफ़्ते-भर से न बिज्जू दादा की गालियाँ सुनाई दे रही हैं न किसी की गाल या पीठ पर उसके हाथों तबला बजा है।

भिखारियों के अपने-अपने अनुमान लग उठे। रात के ठिकानों पर बाकायदा बिज्जू दादा की दशा और दिशा पर भिक्षुक-विमर्श हो उठा। इन या ऐसी चर्चाओं में बिज्जू पहले अघोषित अध्यक्ष की भाँति उपस्थित रहता था किंतु अब ग्यारह की गाड़ियों के पीठ फेरते ही खजेरू के ठेले की तरफ़ खिंच जाता। मजूरिन भी इसी समय पेड़ के नीचे अपनी फट्टी बिछा लेती थी।

जैसे तैसे दो दिन और कटे कि मजूरिन की मुस्कान की प्रतिक्रिया में बिज्जू पे अपनी गाड़ी ऐन उससे सटाकर रोक ली, “क्यों री! तू मुझे देख हँसती काय है?”

“तो का रोऊँ?” बड़ा अजीब उत्तर रहा।

उत्तर से सिटपिटाये बिज्जू ने गौर किया कि वह उसकी आँखों में झाँकती मुस्कुराए ही जा रही है। लगभग पूरे खुले स्तन पर उसकी मरगिल्ली बच्ची अपना मुँह गड़ाए चिपकी हुई थी। मैली धोती घुटनों से ऊपर जाँघ तक सरकी हुई जिसके नीचे पेटीकोट तक नहीं।

बिज्जू को फुरहरी-सी महसूस हुई जैसे किसी ने मुँह पर गंदगी फेंक दी हो। तमतमाकर गुस्से में भर उठा वह, “तेरी चाल ढाल से जी में आता है कि चुटिया पकड़ कर घसीट दूँ यहीं।”

“मेरा, खसम भी घसीटता था कभी कभार...तू भी कर ले मन की।” वह उसी तरह आँखों में आँखें डाल उसी तरह मुस्कुराए जा रही थी।

होंठो की हँसी और आँखों में कोई बाती-सी जलती देख बिज्जू गाड़ी आगे ढरका ले गया। लग रहा था कि मजूरिन की मुस्कान भरी नज़र पीछे आ चिपकी है और पीठ में छेद कर सीने की ओर सरकती आती है। उसने हाथों के सहारे सरपट गाड़ी दौड़ा दी। अनेक यात्री उसकी तेज़ी को हैरत से देख उठे। कुछ मँगलों ने भागते मुखिया तक जुहार पहुँचाने का प्रयास किया किंतु बिज्जू न जाने कहाँ, क्या देख रहा था। तीन प्लेटफार्म फलाँगता हुआ वह खजेरू के ठेले के पास आकर रुका किंतु ठेला खाली था। इस समय तो खजेरू अपने डेढ़ कमरेवाले घर में खाना खाकर आराम कर रात के लिए ऊर्जा सहेजता है, जहाँ उसे देर तक जिंदगी के लिए लड़ना है।

बिज्जू पर कोई थकान-सी चढ़ उठी। राहत पाने के लिए उसने अपनी गाड़ी पेड़ की छाँव में लगा ली और सिर पीछे टिका जाने क्या सोचने लगा। दोपहर सिर पर टँगने के बावजूद उसे खाने का खयाल न आया। बस थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह गाड़ी से लटकती बोतल से घूँट दो घूँट पानी पीता रहा...वह अपने आपको

कहीं ठगा-सा अनुभव कर रहा था और यह ठगा जाना उसे अच्छा भी लग रहा था।

धूप लगने पर पाँच के आसपास अपनी रोजी-रोटी जमाने खजेरू ठेले पर आया तो पेड़ के नीचे बिज्जू की गाड़ी खड़ी देख आशंकित हुआ, “बिज्जू दादा। इस बखत यहाँ कैसे?...तबीयत तो ठीक है?”

“जी कुछ ऐसा ही उमड़-धुमड़ रहा है खजेरू भाई? जाने क्यों आज मन में बार बुझौवल हो रहा है कि इस तरह जीते रहने का मतलब क्या है?”

“किस तरह...”

“जैसे मैं या मेरे जैसे जी रहे हैं...हम साले धरती का बोझ।”

“मतलब?”

“मतलब ही तो नहीं समझ पा रहा हूँ। ठीक-ठाक घर था...परिवार था...पेट भरने लायक खेती थी। इंटर पास किया था। नैतिक शिक्षा के पाठ मन पर छाए रहते थे, ‘अन्याय करना ही नहीं, अन्याय सहना भी पाप है।’ बस इसी के नतीजे में पैर गँवाने पड़े...घर गाँव छोड़ना पड़ा। न छोड़ने पर जो मेरे संग हुआ वैसा पूरे परिवार के साथ हो सकता था। होता ही...जिन्होंने इतना किया वे उतना भी कर डालते। उन्हें कौन देता सज़ा? ...सज़ा मिल भी जाए अगर तो बीता हुआ काल लौटता थोरे है। सो अस्पताल से सीधा सड़क पर आ गया। राम ने वनवास भोगा था, मैं नगरवास भोग रहा हूँ यहाँ। जन्मभूमि से सौ कोस दूर...मगर क्यों?...सिर्फ जीने के लिए? खजेरू भाई, जान साली इतनी कुत्ती चीज़ क्यों है?”

खजेरू चुप रहकर ठेले पर स्टोव जला हवा से लौ को बचाने के लिए टीन का घेरा लगाने लगा। वह सोच रहा था पर कहने के लिए शब्द नहीं थे कि जीवन जल के प्रवाह की तरह होता है; उसे बहने से कोई नहीं रोक सकता। पानी का बहाव बड़ी चट्टानों को काट पतली सी ही सही अपने लिए राह बना लेता है। इस समय तो खजेरू के आगे तले मसालों के डिब्बे, प्याज, धनिया, नींबू तैयार करने, जमाने को थे। हँडपंप से पाँच बाल्टी पानी टंकी में भरना था। उस जैसे आदमी के लिए एक दिन जीने की तैयारी युद्ध से कम नहीं होती...

खजेरू व्यूह रचना में लग गया।

“मेरी बात नहीं सुनी?” बिज्जू ने टोका।

“सुनी है भाई...पर मैं क्या कहूँ? तू तो सोच भी लेता है। यहाँ जान को इतने बवाल लगे हैं कि पेट से आगे कुछ सोचने का टैम ही नहीं बचता।”

“राम राम खजेरू भाई!” ठेले के पास झटके से सायकिल रोकने वाला रामनाथ मौर्य था। सायकिल के कैरियर पर खबरें लादकर शहर में बाँटने वाला।

“राम राम! और क्या हाल है भैया!” खजेरू ने हाथों को व्यस्त रखते हुए पूछा।

“सब ठीक है। आज सुबह वो पगली पुल के नीचे मरी पाई गई। वही जिसका पेट फुला दिया था किसी ने।” रामनाथ ने सूचना दी।

इस सूचना पर बिज्जू चौकन्ना हुआ, “केलसिया मर गई क्या?”

“नाम तो मैं क्या जानूँ। तुम्हीं जानते होगे...तुम्हारी बिरादरी की थी।”

“तो क्या मैं भिखारी हूँ?” बिज्जू कुछ भड़क गया, “मुझे भीख माँगते देखा है कभी तूने?”

“सो तो नहीं देखा...पर रहता तो भिखारियों के बीच है। उनसे वसूली करता है, पंचायत करता है उनकी। ...नेता है भिखमंगों का। गलत कह रहा होऊँ तो पाँच जूते खाने को तैयार हूँ, बुरा लगा हो तो आगे ध्यान रखूँगा मैं। यूँ बजरिया में सब भिखारी ही तो मानते हैं तुम्हें।” रामनाथ ने पक्ष रखा।

“बजरिया का कौन साला बोलता है भिखारी? मुझे एक-एक की नस मालूम है। चोरी तस्करी का माल गलाते हैं हरामी। गाँधी जयंती के दिन तक को दारू पिलाता है वो होटल वाला सेठ और वो...चल कहलवा मेरे मुँह पर...कौन वीर है ऐसा जिसके चूतड़ों के बीच छेद न हो।” बिज्जू आपा खोने लगा।

“मुझे क्या पड़ी है फटे में पाँव देने की। वो तो खजेरू ने पूछा सो बता दिया कि गाभिन मैंगती पुल के नीचे मरी मिली है।” कह रामनाथ सायकिल पर सवार होकर रुखसती डाल गया।

ये समय स्टेशन के सामने वाले मैदान की इस सड़क पर भीड़ की हिलोरों का होता है। घंटे-भर के दरमियान छह गाड़ियाँ छूटती पहुँचती हैं। रेल पेल, कान फाड़ शोर और बदहवासी, अफरातफरी भरे माहौल में बिज्जू अपने आपको निपट अकेला अनुभव करने लगा। खजेरू बाल्टी भरने हँडपंप पर झूल रहा था। उसने वहीं से पूछा, “ये केलसिया तुम्हें रोज़ कितना देती थी?”

“भाई! तुम्हें बता चुका हूँ कि औरत से वसूली नहीं करता।”

“ओ हो...वैसे मुझे लगता है कि रहम दिखाना भी खुद को बड़ा मानने या गुनाह को ओट देने का तरीका है। पर इस तरह खुद को ही ठगता भी है आदमी...”

बिज्जू खिलखिला पड़ा, “अरे वा! तुम भी अफलातूनी झाड़ लेते हो। पर कुछ भी कहो, किसी-किसी को ठगे जाने में भी मज़ा है। अच्छा चलूँ! किसी से बात न हो पाई तो केलसिया का पता ही न चला। पुलिसवालों से कहकर उसकी मिट्टी ठिकाने लगवाने का फ़र्ज बनता है।”

बिज्जू के जाते ही खजेरू व्यस्त होने लगा। ग्राहक ठेले तक पहुँचने लगे थे। यह धंधा भी रेलगाड़ी की तरह धीरे-धीरे रेंगकर रफ़्तार पकड़ता है। बिज्जू ने पहले थाने पहुँचकर जानकारी ली। पंचनामा होकर लाश पोस्टमार्टम की

औपचारिकता के लिए पड़ी थी अस्पताल में। हथ-सायकिल से चलकर अस्पताल से भी खानापूरी करवाई। पीपल के नीचे यहाँ हनुमान जी व देवी का मंदिर बना लिया गया है। कुछ भिखारी यहाँ भी बसते हैं जिन्होंने यथा संभव बिज्जू का सहयोग किया। बिज्जू को एक बार फिर स्टेशन लौटना पड़ा और चंदा करके कुछ राशि भिखारियों से एकत्र की, कुछ अपनी जेब से मिलाई फिर गाड़ी ढरकाता थानेदार की मेज़ के किनारे जा लगा, “हुजूर! इतना हमारा...बाकी लगे सो आप कृपा करो। भिखारिन की मिट्टी है चाहे आग के हवाले करो चाहे चील कौवों के।”

आज स्टेशन के भिखारियों का शोक दिवस मना। जैसे-जैसे केलसिया की खबर फैलती गई। उसका कारोबार बंद होता गया। रात आठ बजे उठावनी की रस्म भी हुई तो आधुनिकता निभाते हुए दो मिनट की मौन श्रद्धांजलि के बाद कुछ अपने ठिकानों को टरक लिए और कुछ गोला बनाकर गाँजे की चिलम के साथ लोक-परलोक की चर्चा में रमे।

शोक सभा में उपस्थित मजूरिन भी हुई थी। बिज्जू से निगाहें भी मिलीं पर वह मुस्कुलाई न थी। चुपचाप उठकर अपने ठिकाने आ ठहरी थी। खजेरू ने बच्ची को छाती से चिपटाये गुमसुम खोई सी लौटती मजूरिन पर एक निगाह ज़रूर फेंक ली थी और पुनः अपनी व्यस्तता के हवाले हो गया।

बिज्जू दस बजे के आसपास लौट आया और खजेरू को दो अंडे की भुर्जी का आदेश फेंककर चिंतक-सी मुद्रा में सिगरेट सुलगा धुएँ के घूँट पीने लगा। ठेले के आसपास अन्य ग्राहक भी थे।

भुर्जी की पुड़िया सँभाल बिज्जू अपनी हथसायकिल पेड़ के नीम अँधेरे की ओर बढ़ा ले गया। खजेरू ने उसे तुरंत ही निपटा दिया था। बिज्जू भिखारियों की भाँति न रहता है, न लगता है फिर भी ग्राहक उसकी निकटता पर थोड़ा बहुत चौंकते या बिदकते ही हैं। यह यथार्थ खजेरू और बिज्जू दोनों जानते, समझते हैं।

बिज्जू को जानकारी न थी कि मजूरिन यहाँ पहले से ही आ पसरी हैं पर अब तो आ ही पहुँचा था। दारू की तलब सिर उठाने लगी थी किंतु परायी स्त्री के पास दारू कैसे पी जा सकती थी? ...भले ही भिखारित हो वह। बिज्जू ने अपनी गाड़ी लौटाई।

“आज तें भी जल्दी आ गया?” जनानी आवाज़ से हथपैडल पर जोर लगाता बिज्जू का हाथ थम गया...गाड़ी रुक गई।

“मैंने कही कि आज जल्दी आ पहुँचा तें।” एक मिठास फिर कानों के रास्ते भीतर उतरी।

“हाँ...वो केलसिया चली गई न आज।

“अभी भी मातम में डूबा है, तेरी कोई लगती थी?”

“जान पहचान का भी रिश्ता होता है। गाँव में तो चौपाये के मरने पर भी गले से कौर उतरना कठिन हो जाता है। केलसिया तो हमारी मानुस जात थी।”

“दोपहर खाना खाया तैंने?”

“ध्यान ही नई रहा।”

“और अभी तो तू दारू पिएगा?”

“तू कैसे कहती है?”

“रोज़ देखती हूँ...मेरा मर्द भी पीता था...पर वो धमाल बहुत मचाता था...आंय बांय कुछ भी बकने लगता था। तेरे में अच्छाई है कि पीते बखत और पीने के बाद अपना पीना दुनिया को नहीं दिखाता।”

“तेरा मरद मरा कैसे?”

“कहते हैं कच्ची पी गया। वैसे मन का बुरा नहीं था। मरने के कुछ देर पहले मुझसे कौल किया था कि सावित्री...अब कसम खाता हूँ कि दारू नहीं पियूँगा। ...थोड़ी देर बाद वो मर गया।”

“तेरा नाम सावित्री है?”

“है तो...”

“बचा लेती अपने उस मरद को...सत्यवान को।” बिज्जू ने चुहल सी की, “तूने सावित्री सत्यवान की कथा सुनी है?”

“सुनी क्या गाई भी है। पर मैं न उतनी सावित्री हूँ और वो सत्यवान तो बिलकुल नहीं। मैंने उसके होते और बाद में अभी तक ग़ैर मरद की चाह नहीं की। जबरदस्ती की बात अलग है...भुगतनी पड़ती है। ख़ैर तें अपना काम कर। ऐसी रामकहानी तो जगह-जगह सुनने को मिल जाएगी।”

“तू इतने गंदेपन से काये रहती है...बास आती है। ज़रा सी साफ-सफाई में क्या लगता है?”

सावित्री हँस उठी, “इस गंदगी और बास पर भी मुँह मारने को तैयार रहते हैं लोग। चटक-मटक से रहूँ तो चीँथ ही डालेंगे। वो तो अट्टे-भर से खजेरू भैया से हिम्मत बँधी है थोड़ी।”

सावित्री की हँसी में शिकायत है या उलाहना, कराह है या मात्र सच्चाई का उद्घाटन; बिज्जू समझ नहीं पाया। रंगरूप में कम नहीं यह औरत। पढ़ी-लिखी न हो शायद, किंतु जिंदगी को बहुत पास से समझा है। बिज्जू की तरह अपाहिज भी नहीं...फिर ये जिल्लत क्यों भोगनी पड़ रही है उसे? ऐसी जिंदगी को ठीक ठाक पटरी मिल सकती है क्या?...भाषणों और घोषणाओं में सावित्री को क्यों भुला दिया जाता है? बिज्जू परेशान हो उठा।

सिर को झटका मारने के बाद उसका दूसरा सोच दूसरी दिशा पकड़ गया—

मैं क्यों परेशान हो रहा हूँ इसे लेकर? दुनिया में हज़ारों लाखों औरतें होंगी ऐसी। ...फटेहाल...लुटती पिटती...झोली पसारे जानवरों की मानिंद जिंदगी। मैं कौन राजा महाराजा सत्ताधीश थैलीशाह हूँ? ...जो हैं वे भी क्यों परवाह करें? ...कितनों की करेंगे। वैसे भी साले घर भर रहे हैं अपना। बिज्जू भी भर रहा है जिसका कोई घर ही नहीं है वह एकाएक हँसने लगा। ...कड़कड़ हँसी जैसे पत्थर कूटा जा रहा हो।

इस हँसी से दहलकर सावित्री की छाती चूसती बच्ची चिंचिया उठी। खजेरू के ग्राहक हाथ मुँह में कौर रोककर पेड़वाले नीम उजाले में आँखें गड़ाने लगे।

जनानी मीठी आवाज़ ने चेताया, “ऐसे काये हँस रहा है?”

हँसी रुकी, “जाने तू समझेगी या नहीं? ...पर बता दूँ कि इस मुलुक का आदमी पागल बनकर ही हँस सकता है, बाक़ी तो रोना ही रोना है। सो भी बिना आँसू...सूखा।” बिज्जू अपनी गाड़ी सावित्री से दूर हटा ले गया।

रात नौद खुली तो स्टेशन के आसपास सुनसान विचार रहा था। खजेरू का ख़ाली ठेला अपनी जगह ऊँघता-सा...न आवाज़ न आवाज़ाही। बोटल से गटगट पानी पीकर खँखार थूकते हुए बिज्जू गाड़ी सावित्री के पास ले आया।

“काये नींद नई आय रही?”

“अरे! तू भी जग रई है...”

“इतें काये को आया?”

“ऐसेई मन हुआ...आय गया।”

“सोवें चाहत है मेरे संग?”

बिज्जू चिंहका जैसे जलते कोयले पर पैर पड़ गया हो, “तू कुतिया है साली! पास आने का क्या वही मतलब होता है...दो आदमी सुख-दुख नहीं बतरा सकते?”

“गुस्सा मत हो! चिल्लाएगा तो टेंपो, रिक्शावालों की ऊँघ खुल जाएगी। मेरे पास तुझे देख वही समझेंगे, जो मैंने पूछा है।”

“पर तू मुझे इतना ओछा समझती है...”

“मैंने जो देखा है वही कहा...तू अलग है ये तो रहते-बसते ही पता चलेगा ना!”

“अच्छा, तू रह बस सकती है मेरे संग? ...बोल!”

“तें रखेगा संग?”

“हाँ रह लेंगे। तू भीख छोड़ेगी...मैं भी कोई धंधा टटोलूँगा।”

“हाँ, धंधे तो ताक में धरे हैं ...हाथ बढ़ाओ, उठाय लो।”

इस बात पर बिज्जू हँसा ज़रूर पर मिठास भरकर, “सुन! ज़्यादा पढ़ा-

लिखा नहीं मैं, पर खजेरू की वो बात मानता हूँ कि जिंदगी जल की धार है जो चट्टानों में भी बहने का रास्ता बना लेती है। अगले हफ्ते शहर में सरकारी उत्सव शुरू हो रहा है। देस-बिदेस से हज़ारों लाखों लोग जुटेंगे। पूरे हफ्ते बढ़िया धंधा चलेगा और सोचने का टैम भी मिल जाएगा। मैं इस बीच अपने गाँव जाता हूँ। बरसों हो गए गाँव घर छोड़े। भैया भौजी भी मुझे मरा खपा मान चुके होंगे। भतीजे, भतीजियाँ बड़ी हो चुकी होंगी। टूटी टाँगों से गाँव में घुसते देख दुश्मन तो हँसेंगे कँटीली हँसी पर सह लूँगा। खेत में झुपड़िया डाल लूँगा। नहीं रहूँगा गाँव में। ...ऊधौ का लेन न माधै का देन।”

“हाँ उत्सव तक लौटूँगा जल्दी। खजेरू है ही तू फिकर न करना।”

“ठीक है जल्दी ही लौटना।” बिज्जू ने अनुभव किया कि सावित्री की आवाज़ में थोड़ी उदासी घुल गई है।

“अब तू सो! ...मैं उधर हूँ सड़क किनारे।”

दूसरे दिन गाँव के लिए निकलकर हफ्ते-भर में लौटा बिरजू। प्लेटफार्म पर पहुँचते ही लगा कि कहीं किसी गलत जगह पर तो नहीं आ उतरा—साफ़ चमचमाता प्लेटफार्म...स्वागत के बैनर पोस्टर। एक परिचित कुली से उसने अपनी हथसायकिल उतरवा ली...यही तो पाँव हैं उसके।

खाने-पीने के स्टाल भी सजे सँवरे थे...कचरा डालने के लिए “कृपया मुझे इस्तेमाल करें” छाती पर लिखे रंगीन ड्रम। यहाँ थूकें वहाँ सुविधा भोगें और भी जाने क्या-क्या आग्रह अनुरोध जगह-जगह लिखे थे। गाड़ी ढरकाता वह चौकस निगाह से बढ़ रहा था कि कहीं सावित्री दिख जाए। तीन नंबर का पूरा प्लेटफार्म पार कर लिया। आजू बाजू होने से दो नंबर भी उसने निगाहों से छान लिया था। सावित्री तो क्या अन्य कोई भिखारी भी न चमका, “साले जलूस वाले क्या लँगड़े लूलों, अंधों कोढ़ियों को भी भर ले गए?” वह बड़बड़ाया।

ऐसा अकसर होता रहता कि किसी के समर्थन या विरोध, किसी से माँग या किसी का स्वागत करने भिखारी दस्ते जाते रहते हैं। खाने के साथ अच्छी रेट भी मिलती है। संयोजकों के कारकुन स्टेशन से उठाकर स्टेशन पर ही छोड़ जाते हैं। दस परसेंट बिज्जू को भी मिल जाता है पर ओढ़ी कोढ़ी तो दिखते यहाँ...

तीन से यह चार नंबर प्लेटफार्म पर पहुँचा फिर पटरीवाले रास्ते से सीधा नंबर एक पर आ गया। यहाँ की सजावट तो किसी समधी की अगवानी सी थी। नंबर एक पर उसकी हथसायकिल बीस तीस गज की ढरकी होगी कि पीछे से दो चुस्त-दुरुस्त वर्दियाँ चिल्लाती दौड़ती निकट आ पहुँची।

“क्यों बे! फिर आ पहुँचा तू!” एक ने चीखते हुए हाथ का डंडा हथसायकिल पर दे मारा।

बिज्जू सनाका खा गया जैसे बेंत गाड़ी पर नहीं उसकी पीठ पर पड़ा हो। तिलमिलाकर उसने निगाह डाली तो पाया कि ये वर्दियाँ उसकी परिचित, स्टेशनवाली नहीं हैं। बजरिया वाली चौकी से भी नहीं...ये तो शहर के सिपाही भी नहीं लगते...बाहर का फोर्स है शायद। यहाँ की पुलिस तो बिज्जू को पुचकारकर डाँटती है। इस तरह सार्वजनिक अपमान नहीं करती।

बिज्जू अपनी आवाज़ में ज़रा तीखापन लाया ...कितना भी चमक रहा हो, है तो अपना स्टेशन, “क्या है! भाई क्या है इस तरह...”

“साले चार छह दिन भी नहीं जी सकते बिना माँगे?...फौरेन वाले क्या सोचेंगे...क्या कहेंगे। अरे हँसेंगे वे देस पर। थूक देंगे तेरे कटोरे में।” इसी बीच सितारे वाली वर्दी भी आ पहुँची, “पटक दो साले को ट्रक में और फेंक आओ कहीं।”

बिज्जू के लिए ये सितारे भी अजनबी थे। अजनबी को किसी से क्या मोह माया। कहो किसी कुएँ, खाई में ही फेंक आएँ। अपने पैरों पर खड़े होने की सामर्थ्य नहीं और कोई साथ देनेवाला भी नहीं दिखता। ऐसे में तो कोई कौशल ही काम आ सकता है इसलिए स्वर में दृढ़ता भरकर बोला, “क्या समझ रहे हो मुझे? कोई भिखारी विखारी!”

“नहीं! तू तो दानवीर है।”

“दानवीर न सही पर हाथ भी नहीं पसारता किसी के आगे समझे...।”

“मँगता नहीं है तो जल्दी फूट ले यहाँ से। नहीं तो कोई तेरा हुलिया देखकर ही रसीद काट देगा।” सितारेवाले ने हुक्म सुनाया।

बिज्जू मरे और भरे मन से प्लेटफार्म पर ढरकने लगा। उसे महसूस हुआ कि आज यहाँ उसे पहचानने वाला कोई नहीं है, जो हैं वे पहचान स्वीकारने को तैयार नहीं लगते।

स्टेशन के बाहर निकल कर पाया कि खुले मैदान में टेंट गड़े हैं। सड़क के दोनों ओर सफ़ेद पट्टी रचाई गई है ...पट्टी के साथ-साथ फूलों के गमले सजे हैं। धुली-धुली साफ़ सड़क के साथ-साथ बंदनवार झूल रहे हैं। सड़क एकदम सूनी...जनता की आवाजाही रुकी हुई थी या दूसरी ओर मोड़ दी गई थी जैसाकि बड़े नेताओं, अफ़सरों के आने पर होता है। सुरक्षावालों ने उसे देखते ही जल्दी से भाग जाने या आँखों की ओट होने का संकेत दे दिया था।

खजेरू का ठेला अपनी जगह से गायब...और सावित्री के ठौर पर दो बंदूकधारी। कहाँ गए वे लोग जो बिज्जू के अपने हैं। घबराया-सा चक्कर काटता हुआ वह बजरिया तक पहुँचा कि पानवाला कुछ बता सके। ...कई सालों से बिज्जू उसी के हाथ का बना पान खाता आ रहा है। पानवाले ने निगाह पड़ते ही पूछा, “पान बनाऊँ बिज्जू दादा!”

“ये हमारे लोगों में से कोई दिखाई क्यों नहीं दे रहा है? प्लेटफार्म से यहाँ तक एक भी मुंडी नहीं चमकी। खजेरू का ठेला भी नहीं ठौर पै...”

“तुम कहीं गए थे क्या? खुद भी नहीं चमके कई दिन से।”

“अपने गाँव गया था, पर ये सब?”

“अरे! यहाँ चार-पाँच रोज़ से अचानक क्लीन सिटी-ग्रीन सिटी का हल्ला शुरू हुआ है...ये बजरिया ही देखो जैसे अभी मेकअप कराके आई हो ब्यूटीपार्लर से। बहुत विदेशी उतर रहे हैं इन दिनों शहर में...उत्सव मनाने। शहर की सफाई के तहत सबसे पहले भिखारियों को शहर बदर किया गया है। ...लारियों में भर-भर के। शहर की सीमा में एक भी भिखारी नहीं चमकेगा तुम्हें। मेरी तो सलाह है कि कुछ दिन के लिए तुम भी औढ़े ड्यूट हो जाओ। फोर्स वालों ने पकड़ लिया तो न जाने कहाँ ले जा के पटकें।”

बिज्जू का मुँह लाल हो गया, “मैं क्या कोई भिखारी हूँ?”

“नहीं हो—ये बात कितने लोग जानते मानते हैं? ...अपनी तो सलाह है बाक़ी तुम जानो।” पानवाला ग्राहकी में उलझ चला।

अब सावित्री का सुराग मिलने की उम्मीद सिर्फ़ एक जगह बची थी और वह जगह है बजरिया की कलारी। बिज्जू ने अपनी गाड़ी रेजीडेंसी रोड और बजरिया के तिकोन पर स्थित कलारी की ओर दौड़ा दी। सूरज सिर पर तपने लगा था...वह पसीने में सराबोर हुआ जाता था किंतु इस ओर ध्यान कहाँ था बिज्जू का! देह से विदेह बन गया था वह।

कलारी के गेट पर ताला लटका था जिसके ऊपर टँगो काग़ज़ पर सूचना फड़फड़ा रही थी कि ‘उत्सव’ के हफ़्ते-भर कलारी बंद रहेगी। मतलब केवल अंग्रेजी बिकेगी अथवा अंग्रेजी दुकानें भी बंद रहें तो तीन सितारा और पाँच सितारा ठेकों के मोहताज बनिये। पीने वालों के सुनसान अहाते में दो कुत्ते पड़े ऊँघ रहे थे...किंतु बिज्जू जानता है कि गाँधी जयंती और पंद्रह अगस्त को भी इसी तरह ताले और सूचना लटके रहते हैं और छेदों से लेनदेन चलता रहता है। देश की रीति ही यही बन गई है कि जो बताया दिखाया जाता है, होता ठीक उल्टा है उससे। बल्कि उल्टा सुल्टा होना ही मुख्यधारा है।

वह पहले पिछवाड़े के उस छेद पर पहुँचा जहाँ से माँग की पूर्ति होती है। बिज्जू को वहाँ के कर्मचारी जानते हैं। सो नुक्कड़ पर निगहबानी करनेवालों ने आसानी से अंदर की ओर बढ़ने दिया।

कोई घंटे-भर बाद टिल्लू टोंटा भीतर घुसता दिखाई पड़ा। बिज्जू को लगा जैसे परदेस में कोई अपने गाँव शहर वाला मिला हो। टिल्लू भी गाय के बिछड़े बछड़े की तरह दौड़कर बिज्जू के पास आ पहुँचा, “कहाँ गुम हो गए थे बिज्जू

दादा! यहाँ तो सरकार ने गाज पटक दी। इनसानों को भेड़ बकरी को नाई लादकर जाने कहाँ ले गए...किससे पूछें क्योंकि तब वो अपने को भी जाने कहाँ ले जाकर फेंकें। ...लेने चला आया वो तो कि तुमसे भेंट हो गई। अच्छा ले लूँ...?”

“ले ले। ...धंधा तो बंद है, पैसे दूँ?”

“नई ...अबै हैं। तुम्हारे लाने लूँ?”

“जानते तो हो कि मैं सूरज देवता के सामने नहीं पीता।”

टिल्लू टोंटा ने कुहनियों से नीचे टूँट हुए टोंटों में शीशी चाप मुँह से ढक्कन खोला और दो तीन घूँट गले में उतार लिए। टूँटे के सहारे ही कंधे से लटकती खुज्जी से बिंडल माचिस भी निकाल मुँह और पैरों के प्रयोग से बीड़ी भी सुलगा ली। टोंटा के पैर हाथ का काम करते हैं और बिज्जू के हाथ, पैर का काम।

बीड़ी सुलगा टिल्लू ने कुछ घूँट और भरे फिर बीड़ी का सुट्टा मारते हुए पूछा, “हाँ दादा! अब बताओ, कहाँ थे तुम?”

“मैं अपने गाँव गया था। अच्छा ये बता! ...तू उस मजूरिन को जानता है जो नई आई है...हँसती रहती है...”

“हाँ हाँ।” टिल्लू ने पैरों की उँगलियों से नमक की पुड़िया खोलते कहा।

“उसका कोई सूम सुराग मालूम है... कि वह लद गई...या तेरी तरह कहीं बची है?”

“वो तो लद गई दादा!”

“तू ने देखा है?”

“मैं मौक्रे पे कहाँ था...नई तो लद न जाता। तीन चार दिन से दिख नई रई सो लद ही गई होगी। ...पर तुम काये पूछ रये...बिरमचारी आदमी हो, बजरंग के भगत...”

“अरे उसका कोई रिश्तेदार ढूँढ़ रहा है उसे।”

“गये लोगों का क्या ठिकाना—जाने कब लौटें? ...कितने लौटें? ललुआ मुँह वाले इन चिकनों का प्रोग्राम भी जाने कितने दिन चलेगा।” टिल्लू ने बीड़ी के टूँट की अंतिम क्रिया संपन्न की।

“सात दिन चलेगा...” बिज्जू ने उसाँस भरते हुए कहा।

“तब तक तो हम मिट्टी में मिल जाएँगे। लोग कहाँ काटेंगे ये दिन...कैसे काटेंगे? ...वे तो बिखर जाएँगे ...भटक जाएँगे।”

“कुछ भी हो सावित्री जरूर लौटेगी।” बिज्जू जैसे अपने आप से फुसफुसाया। कौन सावित्री बिज्जू दादा!”

“...वो ...अरे वो दूसरी बात है...अभी तो बुरे दिन सिर से उतारने काटने हैं।” कह बिज्जू ने सिर पीछे टिका आँखें बंद कर ली।

तूर्यनाद

पन्नालाल मेरे गाँव का आदमी है। मेरा हमउम्र है। पाठशाला का सहपाठी भी रहा है और इस सबसे पुरानी और नज़दीकी रिश्तेवाली बात यह भी कि हम दोनों के परिवार सैकड़ों साल से एक दूसरे के जजमान रहे हैं। जजमानी यानी प्रतिबद्धता और लेन-देन का रिश्ता।

बात ज़रा साफ़ करनी पड़ेगी क्योंकि लेन-देन तो ठीक पर प्रतिबद्धता के माने अब और तरह के हो गए हैं। ...कैसे कैसे? ...ये आप भी बेहतर जानते हैं, इसलिए मुझे जजमानी वाली प्रतिबद्धता के माने खोलना ज़रूरी लग रहा है। यों समझिए सीधे-सीधे कि पटवारी कागज़ात, वोट सम्बन्धी परिचय-पत्र और पढ़ाई लिखाई सहित अनेक प्रमाण पत्रों में दर्जगी के अनुसार मेरी जाति ब्राह्मण ठहरी और पन्नालाल की बराबर या धानुक। मेरे परिवार का पेशा थोड़ी-सी खेती किसानों के साथ पूजा पाठ करना कराना रहा और पन्नालाल के कुल का कुछ खेती और तुरही बजाना। उधर एक हुनर अधिक था—धानुकों की महिलाएँ जचगी कराने में प्रवीण मानी जाती थीं और इस कौशल के बल पर वे हर घर के लिए अपरिहार्य तो थी हों, अपने परिवार में भी कमाऊ की हैसियत रखती थीं। हम दोनों की पेशेगत प्रतिबद्धता यह थी कि मेरे परिवार में यदि जचगी का अवसर हो, तुरही बजने का मांगलिक क्षण हो या ऐसा ही कुछ भी; तो पन्नालाल, उसके पिता अथवा उसके दादा या उसकी पत्नी, माँ, दादी आदि लायक कोई कार्य हो तो भले ही उस समय उन्हें कहीं अन्यत्र से अधिक दुगना तिगुना अथवा चौगुने का लाभ लाभ दिखाया जाए फिर भी घाटा उठाकर जजमान विधान का मान रखते और कुछ इसी तरह की प्रतिबद्धता इधर से भी थी कि अनुष्ठान करवाने या कथा आदि का शंख फूँकने में समय टकरा जाए तो चौधरी और ठाकुर साहब भले बैठे ही रहें, घंटी बजने की प्राथमिकता जजमान के पक्ष में होती। अंतर इतना ही था कि मैं चाहे पन्नालाल के काम से उसके घर पहुँचू अथवा पन्नालाल मेरे काम के लिए आए—पांलागन (पांय लागन) उसे ही करनी होती।

हमारी पीढ़ी में इतना अंतर जरूर आ गया कि जाने कब से चली आ रही इस पांलागन परंपरा का रूप बदल गया था। हम लोगों के बीच पांलागन करने की बजाय, कहने से ही काम चलने लगा था।

हम दोनों पारस्परिक जजमानों और सहपाठियों के पिताओं की एक साझी किस्म की इच्छा थी कि उनके पुत्र पढ़ लिखकर पटवारी बनें। न मुझे पिता पूजापाठी पंडित बनाना चाहते थे और न पन्नालाल के पिता हीरालाल अपने पुत्र को तुरहीबाज। मुझे आजादी के दूसरे दशक वाले समय में अधेड़पन में धँसते दो पिताओं की चर्चा कुछ इस तरह से स्मरण में आती है। खरहरी खटिया पर बैठे मेरे पिता नीचे ज़मीन पर पालथी मारे हीरालाल से कहते, “कोतवाल! तुम्हारा लड़का तो हो जाएगा पटवारी, मुश्किल हमारे की है।”

“कैसी बातें करते हो पंडित जी! तुम्हारे लल्लू तो पन्ना से हुशियार हैं।”

“हुशियार तो दोनों ही हैं। नंबरों में आसपास ही रहते हैं पर तुम्हें हरिजन का फ़ायदा मिलेगा न!”

“अब कौन जाने? हरिजन का फ़ायदा भी तो नेताओं को मिलता है। हमारी जाति बिरादरी का न तो कोई नेता है, न अपीसर। तुम्हारे ऊपर से नीचे तक हैं। कहीं न कहीं से जुगत भिड़ ही जाएगी।”

और इस तरह एक-दूसरे को झूले पर चढ़ाकर अपने आपको आश्वस्त करते हुए दोनों घंटों चिलम का धुआँ गुटकते रहते। हम दोनों ने पिताओं की इच्छा का सम्मान करते हुए पटवारी होने का भरपूर प्रयास किया पर सरकारी वैतरणी न लाँघ पाए। हाँ इतना जरूर हुआ कि दोनों शादीशुदा और बी.ए. हो गए। सरकारी नियमानुसार अब हम पटवारी की योग्यता से ऊपर हो चुके थे। मैट्रिक से अधिक पढ़ा उन दिनों पटवारी होने के अयोग्य माना जाता था क्योंकि तब पटवारियों के अधिकांश अधिकारी मैट्रिक और इंटर तक ही पढ़े होते थे।

अब हारे का हरिनाम था कि पटवारी से ऊपर का आदमी बना जाए जैसे कानूनगो, नायब तहसीलदार। योग्य पुत्रों के दोनों पिता इसके लिए अपनी ज़मीन जायदाद बेचने तक को तैयार थे किंतु उस पाये का कोई विश्वसनीय आदमी न खोज सके जो...?

पन्नालाल उम्र में उन्वालीसवें में है। संभव है थोड़ा बेसी या कम ऊपर नीचे हो। चूँकि उसकी जन्मतिथि मेरी तरह पंचांग के अनुसार नहीं है...सो जन्मपत्री नहीं बनी। गांधीजी ने भले ही हरिजन नाम दे दिया हो, आखिर माना तो शूद्र ही जाता था और शूद्र की क्या कुंडली बनती? ग्रह उच्च के ही होते तो शूद्र होकर क्यों जन्मता। ...फिर भी उसकी जन्म-तिथि जाने किस संयोग से राष्ट्रीय गिनती में आ गई थी—वह पंद्रह अगस्त को पैदा हुआ था। पन्नालाल का पिता हीरालाल

इस जन्म गर्व को बहुत बार बड़े छोटों के सामने प्रकट भी कर चुका था और इसी के मिलते-जुलते सिलसिले में गाँधी जी कुछ बार उसके सपनों में आए थे—पर चलते-फिरते, बोलते करते नहीं, पन्नालाल की किताब में छपे फोटो की तरह। ...एकदम एक जगह खड़े ठहरे हुए।

गाँव में पन्नालाल कुछ ज़िद्दी सनकी माना जाता है। यह अवगुण उसे विरासत में मिला है। वैज्ञानिक नजरिये से इसे डीएनए की करतूत कहा जा सकता है। यूँ भी अब स्वर्गीय हो चुके हीरालाल कहा करते थे, “सुन रे पन्ना! अगर तू मेरी पेशाब से पैदा है तो...।” पन्नालाल अपना होश सँभालने के बाद से अब तक स्वर्गीय पिता की पेशाब से पैदा होना प्रमाणित करता आया है।

कथा के इस सोपान पर हीरालाली सनक की कुछ बानगी जरूरी लग रही है। ...जैसे कि ठाकुरों जैसी दक्षिणा की एवज में पंडिज्जी अर्थात् मेरे पिता ने हीरालाल के बेटे की जन्मराशि कन्या तय की। उँगलियों पर गिना, ‘आ ला मेष, ऊ बा वृष, का छा मिथुन, डा हा कर्क, मा टा सिंह और पा ठा कन्या अर्थात् तुम्हारे पुत्र का नाम पकार या ठकार से शुरू होगा। ठकार का ठाकुरलाल रखा नहीं जा सकता। ठेठराम या ठूँठराम नाम हो सकते हैं पर ये सुहाने नहीं लगते अतः होरा चक्र के अनुसार पा से पहलू या पंचूलाल रख लो भैया!”

“और अगर पंचम सिंह रखा जाए तो क्या राशि बदल जाएगी पंडिज्जी!”

“राशि नहीं, जाति बदल जाएगी। सिंग तो ठाकुरों को लगा होता है ना! कल कोई पूछेगा तो कह बैठोगे पंडिज्जी ने नाम धरा है। जब से जमींदारी गई और जभारलाल दिल्ली की गद्दी पर बैठे हैं तभी से यहाँ वहाँ सुननी पड़ती है कि देस और धर्म का नास पंडितों ने कर दिया। खुद गद्दी पर बैठ गए और गद्दीवालों के सिर पर कमीन बिठाने की चौपड़ रच दी। अब बताओ मुझे जभारलालों से क्या मतलब? सुनना इसलिए पड़ता है कि दक्षिणा लेने का धंधा है। लेने वाले को हाथ नीचा रखना पड़ता है। पर मैं अपनी संतान को बिरतिया नहीं बनाऊँगा। मेहनत और इज्जत की सूखी भी खाएँ तो ठीक, मंगतगीरी की चुपड़ी भी फाँस के संग टेंदुआ के नीचे उतरती है। और भैया! तुम भी हो तो बिरतिया ही—तुरही बजाकर, जनेले करवाकर इनाम बख्शीश ही पाते हो।”

“सो न कहो महाराज! तुरही में साँस फूँकनी पड़ती है। खिंच गई और न लौट पाई तो बस गए ही समझो और हमारी लुगाइयाँ जनेले न करवायें तो पैदा होने वालों के आधे धरती पर आने से पहले सरग को चले जाएँ।” हीरालाल ने अपने काम की महत्ता प्रकट की।

“कहना ठीक भी है कोतवाल तुम्हारा! हमारे तो पुरखे तक देवताओं की घंटियाँ बजाते और शंख फूँकते मर गए और संतान को मँगपन ही सौंप गए। हमसे

आगे भी जो हरि इच्छा...।” पंडिज्जी ने आह भरती भी साँस खींची।

“ठीक है महाराज! तुम बचो। हम न घसीटेंगे, संग तुम्हें। प से पन्नालाल भी होता है...हीरालाल का बेटा पन्नालाल तो ठीक है?”

पंडिज्जी अर्थात् मेरे पिता ने सहमति में मुंडी हिला दी और हँसकर बोले कि “कोतवाल तुम्हारी फूँक में ही कमाल नहीं है, बात भी ठिकानेदार करते हो।”

पंडित यह न भाँप पाए थे कि पन्नालाल तहसीली कस्बे के नामी साहूकार का भी नाम है। अपने काम का बड़प्पन उसने पहले ही जता दिया था और नाम से भी वह कहीं कम न रहना चाहता था। हीरालाल कुछ दिनों अपने समय में चौहद्दी का नामी पहलवान रहा था। कुश्ती के लिए उससे हाथ मिलाते समय अच्छे खाँ पहलवान की पिंडली काँपती थी...ऐसा सुना जाता है; किंतु यह मेरे होश सँभालने के पूर्व के वाक्ये थे। बाद की एक घटना जो मेरे बालपन के समय घटी। उसका तो कभी-कभार आज भी जिक्र हो जाता है।

हीरालाल छोटे ही सही किसान तो थे ही। खुद हल जोतते और बढ़िया बैल जोड़ी रखते। खाने लायक अन्न तो जजमानी से मिल जाता था—बीज बचाकर शेष मंडी को भेजा जाता। एक बार बैलगाड़ी में सलीता भरा गेहूँ मंडी जा रहा था। गाँव में काका, भतीजे, दादा लहुरे ताऊ ताई जैसे रिश्तों का एक अंतहीन जाल फैला होता है और चूँकि बैलगाड़ी कस्बे जा रही थी सो एक भतीजा साथ लग लिया। पन्नालाल कुछ छोटी जाति से होने पर भी रिश्ते में कक्का थे अतः गाड़ी भतीजा हाँक रहा था और पन्नालाल मालिक की हैसियत से साफा बाँधे पिछाड़ी हिस्से में टिके थे। कसरती गोरा बदन, कोंकड़ी मारती तेल चुपड़ी मूँछों और साफ़े में सजे हीरालाल की पाँच अँगुल पोरों वाली लोहाँगी लाठी बगल में धरी थी। पूरा ठसका किसी ठाकुर से कम न था।

तब पक्की सड़कें केवल जिलों तक जाती थीं और पतली होकर तहसीलों तक ही पहुँच पाती थी। गाँव का कच्चा रास्ता...वही बैलगाड़ी की गढ़वात। हीरालाल कुछ ऊँघने से लगे थे कि गाड़ी रुकने से आँख खुल गई। प्रश्नवाचक दृष्टि भतीजे से होती हुई सामने खड़े ताँगे पर पहुँच ठहर गई। ताँगे में रायफलधारी सिपाही के साथ थाने का दरोगा दिखा। मुश्किल यह कि लीक दो पहिए भर होती है और आमने-सामने वाले चार पहिए एक ही लीक से एक साथ नहीं गुजर सकते। हीरालाल ने भतीजे को हुक्म दिया, “एक लीक काट दो रतनू।”

वैसा हुआ, पर ताँगा सहूलियत से गुजरने की गुँजाइश न बनी। यूँ इशारा साफ़ था कि कुछ रास्ता इधर से छोड़ा गया है, कुछ सामने वाला छोड़े। थोड़े-थोड़े दचके और असुविधा दोनों पक्ष सहें पर लीक से हटना ताँगे को नहीं थानेदारी को बराबरी पर समझना था...। एक बेवर्दी वाले आदमी की बराबरी वर्दी को

चुनौती थी। थानेदार बैठा हुआ बैलगाड़ी को इस तरह घूर रहा था जैसे आँखों से फौजें निकलने वाली हों। सिपाही उतरकर नीचे खड़ा हो कंधे पर अपनी रायफल झुलाने लगा था।

गाड़ी लीक काटकर खड़ी हो गई। संकरी गैल में तांगा निकलने की तगह फिर भी न थी ...एक पहिया काटकर ही आगे बढ़ा जा सकता था। लीक के आसपास टीलेनुमा ऊँचाई और झरबेरी की झाड़ियाँ थीं। थानेदार घूर रहा था किंतु हीरालाल की चाक चौबंद गाड़ी, बैलों की बढ़िया जोड़ी, नौकरों की तरह हाँकता भतीजा और खुद हीरालाल की ठवनि से यह प्रभाव कायम हो रहा था कि गाड़ीवाला भी कोई कम नहीं, श्री संपन्न आदमी है। उसने वर्दी की इज्जत करते हुए आधी गैल भी छोड़ी है, गोकि गाड़ी में माल लदा है और क्रायदे से ताँगे को ही पूरी गैल छोड़नी होगी। ऐसा करना पुलिस की हेठी में शुमार था अतः रौब में बारीक मुलायमी डालकर थानेदार ने पूछा, “कौन गाँव की गाड़ी है?”

“नदी गाँव की साब!” हीरालाल ने आवाज़ में आदर घोलकर उत्तर दिया।

“कौन ठाकुर हो?”

अब जाति आड़े आ गई। हीरालाल ने निमिष भर सोचा और गाड़ी से उतर कर भतीजे से बोला, “पूरी गाड़ी काट के एक किनारे कर लो भैया! और ताँगे के निकट पहुँच हाथ जोड़ कर कहा, “निकाल ले जाइए हजूर। मैं जाति से धानुक हूँ।”

तो ऐसे बाप की पेशाब से पैदा था पन्नालाल। वह हर काम में क्रायदा ढूँढता और हर जगह जाति आड़े आ जाती। आठवें दर्जा तक पहुँचते-पहुँचते पन्नालाल को भान हो चुका था कि वह धानुक के साथ हरिजन भी हो गया है और महात्मा गाँधी ने हरिजन नाम के संग कुछ सुविधाएँ जुड़वाई हैं। उसे पढ़ने के लिए वजीफ़ा मिलता और आगे नौकरी में प्राथमिकता की उम्मीद भी। तभी से वह गांधी का भक्त हो गया था। चीजों को देखने परखने की ज़िद भी बढ़ी थी उसकी।

एक बार गुप्ता मास्साब रामचरित मानस का ‘ऋतु वर्णन’ पढ़ा रहे थे, “सिमिट सिमिट जल भरहिं तलाबा। जिमि सदगुण सज्जन पहिं आबा।” अर्थात् जिस प्रकार चारों ओर से सिमटकर पानी तालाब में पहुँचता है उसी तरह सज्जन पुरुष में गुण एकत्र होते हैं।

हीरालाल ने शंका जताई, “पंडिज्जी! (तब हर शिक्षक को छात्र पंडिज्जी सम्बोधन से ही पुकारते थे) अपनी तलैया में तो पानी के संग गोबर, मूत, गू, घूरे भी बहकर पहुँचते हैं?”

कुछ क्षण के लिए तो गुप्ता जी अचकचा गए क्योंकि स्थानीय सच्चाई यही थी। कक्षा के छात्रों की आँखें पंडिज्जी के चेहरे पर जम गईं कि देखें तुलसीदास

सही घोषित होते हैं या अपना पन्नालाल। गुप्ता जी धर्म-परंपरा और यथार्थ के द्वंद्व में फँसे थे किंतु थोड़ी ही देर में द्वंद्व को झटकाकर दीवार से सटाकर रखी गई नीम की साँट तड़तड़ पन्नालाल पर बरसाना आरंभ कर दी—

“बेटीचोद!...बराहर की औलाद! तुलसीदास से अधिक ज्ञानी है तू?...ससुरे ज़रा सा पढ़ना सीख गए तो मूँड पर मूतने लगे।...छुद्र नदी चली भरि उतराई। जिमि थोरे धन खल बौराई।...ऐं?”

पन्नालाल गुप्ता पंडिज्जी का आदर करता था। वह मेहनत से पढ़ाते थे। कोई भी छात्र हिंदी, गणित, इतिहास, भूगोल के सवाल उनसे कहीं भी पूछ सकता था। मिडिल की चूँकि बोर्ड वाली परीक्षा होती थी तो उसके छात्रों को अतिरिक्त समय देते थे। स्कूल की नाक थे गुप्ता पंडिज्जी। वे जाहिरी तौर पर हरिजन छात्रों से भेदभाव भी न रखते...गांधीजी के परम भक्त...। अतः बहुत दिनों तक पन्नालाल उनके कुपित होने का मर्म ही न समझ पाया। यह तो बाद में सुझा कि निर्धारित उत्तरों की लीक पर चलने वाले नए प्रश्नों का सामना होने पर बौखला उठते हैं।

हाईस्कूल का इम्तहान देने की साल भी एक घटना हुई। ...तहसीली क्रस्बे में आहूत धानुक (बराहर) समाज की बैठक में इस प्रस्ताव पर मुहर लगी कि आज से समाज का कोई भी व्यक्ति शादी-ब्याह, खुशी-गमी याने किसी भी अवसर पर, कहीं भी तुरही अर्थात् रनसिंगा बजाने नहीं जाएगा और न किसी की बहू बड़यर कहीं जनेला (प्रसव) कराएगी।

धानुकों के अधिकांश ग्रामीण परिवारों के लिए ये दोनों काम अतिरिक्त आय और बहुतेरों के लिए आय के मुख्य स्रोत थे। शहर व क्रस्बों के नेता किसी-न-किसी दूसरे धंधे में लगे हुए थे किंतु गाँववालों के तो पेट पीठ का आधार ही भहराने लगा। पेंच यह था कि पीढ़ियों से चला आ रहा तूर्यवादन कर्म जातीय असम्मान घोषित कर दिया गया। गाँव-भर में दाई के रूप में धानुक स्त्रियों की विश्वसनीयता और कौशल को मान्यता थी। शहर में जाकर प्रसव कराने की ज़्यादातर गाँववालों की हैसियत थी न सुविधा। प्रश्न तत्कालिकता का भी था पर सबसे ऊपर यह कि कोई बहू-बेटी प्रसव पीड़ा में छटपटा रही हो, मरने जीने के लाले पड़े हों तो ऐसे में सहयोग से मना कैसे किया जाएगा? गाँव कोई मकानों का ही नहीं, रिश्तों का भी झुंड है। यहाँ मरने और जन्म लेने वाला रिश्ते में हर किसी का कुछ-न-कुछ होता है। रिश्तों का लिहाज़ टूटा तो आदमी और चौपाये में फ़र्क ही क्या रह जाएगा? ...तब न माँ बेटे का रिश्ता बचेगा, न बाप बेटी का। सभी के सभी सिर्फ़ नर और मादा होंगे।

रिश्तों की यह बात की थी हीरालाल ने। उसने विरोध दर्ज कराया था कि

‘शहरवाले तो कल यह कह देंगे कि किसानों भी सम्मान वाला धंधा नहीं। किसान को भी पटेल से लेकर पटवारी और हर छोटे-बड़े कर्मचारी के आगे हाथ बाँधने पड़ते हैं, फिर...?’

नेताओं ने हीरालाल का तर्क सम्मान की तुरुप से बैठक में तो दबा दिया किंतु उसने अपनी तुरही न तो खूँटी पर टाँगी न औने-पौने ठठेरे के हाथ बेची बल्कि पन्नालाल को सौंप दी कि, “बेटा! ये हुनर देवताओं ने हमारे पुरखों को सौंपा था। समय की बात कि धंधा भी बन गया...इसे डूबने मत देना।”

शादी ब्याह आदि पर बजाने की कमाई तो बिरादरी के भय में हीरालाल ने छोड़ दी पर यह जताने कि मैंने तुरही नहीं छोड़ी, वह पंद्रह अगस्त के रोज़ प्रभातफेरी में आगे-आगे तूर्यनाद करते पूरे गाँव में घूमे।

हाईस्कूल में बिरादरी के इने-गिने लड़कों की तरह अच्छे नंबरों से पास होने पर भी पन्नालाल उतना चर्चित नहीं हुआ जितना तुरही बजाने का प्रतिबंध तोड़ते हुए हुआ। समाज में एक खलबली सी मची कि इतना पढ़ लिख कर भी तुरही फूँकता है लड़का। बिरादरी का ख़ौफ़ नहीं मान रहा। तीन चार जाति नेता सायकलों पर चढ़ कर गाँव आये...ऊँच-नीच कहा, समझाया और भय दिखाकर लौट गए। उन्हीं में से एक ने तीन महीने बाद ही अपनी बेटी की सगाई पन्नालाल के संग तय कर दी क्योंकि मिडिल में पढ़ रही पुत्री के लिए पढ़ा लिखा वर और ऐसा खाता पीता परिवार ओर पास दुर्लभ ही था। हीरालाल को इस आश्वासन में लपेटा कि सिफारिश लगाकर पन्नालाल को पटवारी बनवा दिया जाएगा। और जिस दिन पन्नालाल ने पटवारी ट्रेनिंग का फ़ार्म भरा वह घर के लिए ही नहीं, मुहल्ले भर के उत्सव का दिन था। हनुमान जी पर प्रसाद चढ़ाया और बाँटा गया। लोग जानते थे कि पन्नालाल चुन लिया जाएगा। ख़र्च की बात भी आई तो हीरालाल पीछे नहीं हटेगा चाहे दो चार बीघा ज़मीन निकालनी पड़े।

गाँधीजी और हनुमान जी के बूते जितना हो सकता था हुआ यानी पटवारी परीक्षा के हिंदी व गणित वाले पर्चों में हरिजन कोटे से पन्नालाल सूची में काफ़ी ऊपर था पर यहाँ भी जाति ही उसे नीचे उतार लाई। अधिकारियों और नेताओं में सवर्ण अवर्ण के विभाजन से सूची बँटी। इंटरव्यू में बैठनेवाले अधिकारी कायस्थ व ब्राह्मण तथा विधायक जाटव थे। क्षेत्र के हरिजनों में जाटव ही बहुसंख्यक...इसलिए चुनावी गणित में उन्हीं का पलड़ा भी भारी। गाँव-गाँव धानुकों के दो चार घर और जाटवों के टोल के टोल। परिणाम में खेत रहा पन्नालाल।

उसने हार नहीं मानी। अगली वर्ष पुनः मैदान में उतरा और पुनः व्यूह न भेद पाया। हार उसने फिर भी न स्वीकारी और तूर्यवादन का रेट दुगुना कर दिया। बीस कोस के घेरे में अकेला तूर्यवादक पन्नालाल। ज़रूरतमंदों, ठसकीलों के

मनुहार भरे बुलावे पर बुलावे आते। इस प्रकार तुरही बजाकर कमाई करते पन्नालाल बी.ए. हो गया।

बिरादरी में हल्का सा भूचाल पन्नालाल की पत्नी भी लाई। वह मायके का विरोध दरकिनार कर दाई का प्रशिक्षण लेने शहर चली गई। पन्नालाल दंपति के आपसी विमर्श में यह तय हुआ था कि जन्म भले ही मलद्वार से होता है किंतु नए की सृष्टि में घृणित, अपवित्र, वर्जित कुछ भी नहीं। यूँ तो खेतों की खड़ी फ़सल सूख जाए आखिर उसे भी तो सहेजना, सहेलना होता है। पुराने से नया तो कुदरत का दस्तूर है।

गाँव के लिए यह राहत की बात थी। नर्सिंग होम के खर्चों से आदमी बिलबिला रहा था...कमर टूट जाती थी। वहाँ कोई औरत सहज जनने योग्य ही नहीं मानी जाती थी...हर जनम ऑपरेशन से और दवाइयों का खर्चा इतना कि जितने में पूरे परिवार को दूध पिलाने वाली भैंस खरीद ली जाए। पन्नालाल की पत्नी अपनी जिम्मेदारी और कौशल से असफेर तक कुसमा बहू के नाम से मशहूर हो गई। चार हाथों की कमाई से घर में सोना नहीं तो चाँदी ज़रूर बरसने लगी थी। पन्नालाल ने घर का अगवाड़ा और पिछवाड़ा पक्का-पक्का बनवा लिया था। उसी में अल्मारीदार एक बैठक निकलवाई जो कुर्सियों, रेडियोग्राम से सजाई गई। इसी बैठक में फूलदार रेशमी फुंदनों की डोरियों से सजी तुरही टोढ़ी से टंगी रहती। पन्नालाल अब हर घर की ज़रूरत का आदमी था। उसने बैठक के द्वार पर तख्ती ठोंकी, “पन्नालाल ‘तूर्यनादी’ बी.ए.।

शहर के राजकुमारों वाले स्कूल में महामहिम राष्ट्रपति महोदय का आना तय हुआ था। जिला कलेक्टर नया होने से कुछ उत्साही और कलाकार मिज़ाज का था। शासक की ओर चारों ओर से सिमटने वाली रिश्त का चस्का उसे अभी नहीं लगा था। राष्ट्रपति महोदय के परंपरागत स्वागत के क्रम में उसे तूर्यनाद का खयाल उठा। राजा महाराजाओं और देवताओं के स्वागत में तूर्यनाद भारतवर्ष की प्राचीन परंपरा है और हुआ यह कि एक सुबह परगने के तहसीलदार की जीप पता पूछती हुई पन्नालाल की गली के मुहाने पर आ ठहरी।

हीरालाल उस समय दिसा मैदान से फ़रागत हो कुल्ला दातौन कर अपनी चिलम तैयार कर रहे थे। पन्नालाल उनके लिए हुक्का खरीद लाया था। वे खटिया पर बैठे गुड़ सौंफ वाली खमीरी का आनंद लेते रहते। मेरे पिता को भी जब अच्छी तंबाकू की तलब लगती तो चलकर हीरालाल के यहाँ पहुँच जाते। हीरालाल के यहाँ नई दरी और खाट का सिरहना अपने पुरोहित जू के लिए आरक्षित था। जीप की घर्घर् सुन पिता भी उस ओर बढ़ लिए थे। तहसीलदार कलेक्टर के आदेश पर पन्नालाल को तूर्यवादन हेतु न्यौताने आया था। पन्नालाल ने चाय बनवायी तो

पिता असमंजस में पड़ गए। ‘कहीं’ चाय उनको भी पेश कर दी गई तो...? सम्बन्ध अपनी जगह हैं पर उनमें खानपान वाला घासड़घेल उनकी देह तक कैसे संभव होगा। वे उठ आए थे और मुझे भेज दिया था। चाय पानी तक मेरा भ्रष्ट होना उन्होंने स्वीकार कर लिया था।

खैर पन्नालाल ने स्वीकृति के साथ शर्त रखी कि, “उसे लाने ले जाने के लिए गाड़ी भेजनी होगी। पैसे वालों का स्कूल है फिर भी राष्ट्रपति के लिए वह सिर्फ़ ग्यारह सौ मेहनताना लेगा।” तहसीलदार ने भवों में बल डाले फिर भी मुस्कुराकर शर्तें मंजूर कर लीं।

राष्ट्रपति महोदय पन्नालाल के नाद से इतने प्रभावित हुए कि पाँच मिनट का अतिरिक्त समय देकर मंच से पन्नालाल की तुरही सुनी। शाबासी दी। अखबारों में तुरही बजाते पन्नालाल के फोटो छपे। पन्नालाल की कला का यश देश देशांतर में फैल गया। अब वह पटवारी पटेल को डाँटने की स्थिति में पहुँच चुका था...गो कि उसने अपने कारण ऐसा किया नहीं।

वह तुरही पर स्वरो के नए प्रयोगों में जुट गया था। साँस की सामर्थ्य उसने इतनी बढ़ाई कि ताँबे से बना सर्पिले आकार का वह वाद्य इतने समय तक आसमान में गूँजता कि सुनने वालों की साँसें अटक जातीं। लगता कि वह शायद तलवों के जरिये धरती से साँस खींचता है और फूँक के द्वारा तुरही में होकर आकाश की ओर उछाल देता है। कभी-कभी महसूस होता कि आसमान में तुरही ताने पन्नालाल कोई हाड़ माँस वाला जीव नहीं, किसी मंदिर के स्तंभ पर गढ़ी हुई कोई मूर्ति है...अविचल अभेद्य।

सब ठीक था...अच्छा लगता...ज़रूरी भी था—मान-सम्मान और अपनों के बीच ऐश्वर्य भी किंतु यह फाँस भीतर अभी भी कहीं चुभती। भले ही पन्नालाल अपने फन का माहिर...गाँव बिरादरी के बीच गिनती के पढ़े लिखों में से एक, संपन्न...पर है तो धानुक ही। समय इतना भर ही तो बदला है कि पुरोहित का बेटा उसके हाथ से चाय पानी कर ले। ...पर जिले भर में से उसकी जाति से न कोई सरपंच है, न पटवारी। शायद कहीं हो कोई चपरासी क्लर्क। विधायक तो देश भर में कोई न बन पाएगा। पार्टियाँ जाति की संख्या गिनकर टिकिट बाँटती हैं। उन्हें न हुनर से लेना देना है न योग्यता से। राष्ट्रपति महोदय पन्नालाल की पीठ खूब ठोंक दें, गाँव का सरपंच नहीं बना सकते। सरकार में भागीदारी का उसका हिस्सा उस ही वर्ग की किसी बहुसंख्यक जाति द्वारा छीन लिया जाता है।

नदी गाँव में इस बार स्वयं मुख्यमंत्री जी पधार रहे थे। पन्नालाल की पटवारी परीक्षा के समय वाले विधायक अब मुख्यमंत्री के मुँह लगे मंत्री हैं। अफ़वाह है कि मंत्रीमंडल में फेरबदल होना हैं मंत्रियों की चिंता अपनी-अपनी तरह से जायज़

है, किसी को बने रहना है...किसी को और भी महत्वपूर्ण अर्थात् मलाईदार विभाग पाना है। अपने मंत्री जी भी इस बिसात के बीच हैं। प्रशासन द्वारा तय कार्यक्रम के अनुसार मुख्यमंत्री जी का स्वागत प्रदेश के सर्वश्रेष्ठ तूर्यवादक पन्नालाल की तुरही के स्वरों से ही होना है। प्रशासन ने पन्नालाल से सहमति लिए बिना ही सब कुछ तय कर लिया था। नया कलेक्टर पहले वाला जैसा नहीं था, “अच्छा वो तुरही वाला। क्या सीएम के लिए मना कर देगा? डाल लो उसका नाम।”

“सर वो थोड़ा सनकी है” किसी मातहत ने जानकारी दी थी।

“अरे मैं ऐसे लोगों को खूब जानता हूँ। थोड़ा लालच वालच दिखा दो! हम म्यूजिक एकेडमी को किसी सम्मान पुरस्कार की सिफारिश कर देंगे। ऐसे लोगों को और क्या चाहिए? हाँ ध्यान रहे कि सीएम के स्वागत में कहीं कमी न रहने पाए और जब इस...क्या नाम है उसका? ...हाँ, तो उसकी वो क्या है तुरही ई जब प्रेसीडेंट के लिए बजी है तो सीएम के लिए बजना भी जरूरी है यद्यपि मंत्री जी खुद ही मैनेज कर रहे हैं पर एडमिनिस्ट्रेशन की भी तो जिम्मेदारी बनती है।” एक नायब तहसीलदार पन्नालाल की ओर दौड़ा दिया गया।

एक दिन पहले स्वयं मंत्रीजी व्यवस्थाओं का जायजा लेने पहुँचे। गाँव छोटी मोटी तहसील में बदल गया था। हर महकमे के अधिकारी कर्मचारी अपना होना प्रमाणित कर रहे थे। महीनों मायके रहने वाली बिजली गाँव के तार-तार पर दौड़ रही थी। कुछ कुओं की सफाई की गई। बरसों से सूखे टूटे पड़े हैंडपंप दुरुस्त हुए। ऊबड़ खाबड़ सड़कों का मेकअप हुआ। दरके तिरके सरकारी भवनों की पुताई हो गई। जीपों, कारों, स्कूटर मोटर सायकिलों की भड़-भड़, धूल धुएँ से गाँव का आसमान भर उठा। लल्लो चप्पो वालों की पूरी फौज मंडरा रही थी। दरखास्तें, स्तुतियाँ तैयार हो रहे थे। केवल रियाज के लिए हर सुबह गाँव को जगाने वाली तुरही बंद थी।

गाँव में खुसर-पुसर होने लगी थी, —पन्नालाल बीमार है क्या?”

“नहीं! रोज़ नहाता आता जाता दिखता है।”

“तो तुरही क्यों नहीं सुनाई पड़ती?”

“भाव भी बढ़ गए हैं पन्नालाल के। गरूर दिखा रहा होगा।”

“भाई! काहे थूक उचटा रहे हो...कोई-न-कोई बात होगी।”

मंत्री जी ने पन्नालाल को बुलाने आदमी भेजा, “मंत्री जी मिलना चाहते हैं।”

पन्नालाल ने उत्तर भिजवाया, “ठीक है, चले आएँ जब उन्हें फुरसत हो।”

अपने सद्दी मुसद्दियों, छोटे पूरे अफसरों के बीच जब यह संदेश दिया गया तो लगभग सकते की स्थिति हो गई—मंत्री जी जाहिरी तौर पर तो केवल मुस्कराए

किंतु भीतर-ही-भीतर मिसमिसा उठे, “साले धनकवा को इतना घमंड।”

किंतु वह राजनीति कर रहे थे। कब पूँछ हिलाई जाती है...कब भौंका जाता है...कब काटा जाता है, यह भली भाँति जानते थे। सो जाहिरी बोले, “ठीक है भई! कलाकार बड़ा होता है...हमें खुद ही जाना चाहिए।”

वह उठकर खड़े हो गए, “बहुत काम हैं...पहले पन्नालाल को ही निपटा लें।”

मंत्री जी पैदल ही गाँव की गलियों में बढ़ लिए। एक हुजूम पन्नालाल को आता दिखा। समझ गया कि इधर ही आ रहा है। उसने खड़े होकर खटिया बिछायी। पुरोहित वाली नई दरी मंत्री जी के लिए बिछाने ही जा रहा था कि मंत्री जी खरहरी खाट पर ही बैठ गए, “अरे! ये कुछ नहीं। घर की बात है। सुना कि आपकी तबियत खराब है?”

“नहीं ऐसा कुछ नहीं। बस मन कुछ ठीक नहीं है।”

मंत्री जी हँसे, “कल तूर्यनाद तो होगा न!”

“मैंने कब मना किया है।”

बस बस! आगे कुछ न कहें। आपकी तबियत बाबत् सुनकर हम तो चिंता में पड़ गए थे। अब आज्ञा दीजिए” मंत्री जी खड़े हो गए।

“बैठिए...कुछ चाय पानी...!” पन्नालाल ने गृहधर्म निभाया।

“घर की बात है। चाहे जब आकर पी जाऊँगा। अभी समय नहीं है। आपके स्वास्थ्य के बारे में सुनकर अपने आपको रोक नहीं पाया। अब तो बस...आपके गाँव और मेरी इज्जत दाँव पर है। आपकी कलाकारी ने राष्ट्रपति जी को खुश कर दिया था। उन्होंने शाबासी दी थी आपको...। स्वागत में वो तूर्यनाद होना चाहिए जो राजों रजवाड़ों ने भी न सुना हो। लगे कि सुर उनके चरणों में बिछे जा रहे हैं।”

मंत्री जी ने दोस्ती और अपनापन दिखाते हुए पन्नालाल के कंधे पर हाथ रखा। ...थोड़ा इधर-उधर देखकर फुसफुसाते से बोले, “तुम भी दलित और मैं भी। मुख्यमंत्री जी के खुश होने पर मेरा रुतबा भी तो बढ़ता है। पढ़े-लिखे आदमी हो भाई!...तुम्हें ज़्यादा क्या समझाना।” पन्नालाल के कान में तुरही की कीक फूटी-दलित...तुर तुर तुर तूँ ऊँ ऊँ ई ई ई दलित। तुर तुर ति ति ति ति ती ई ई ई।

“अब चलूँ! ...बहुत काम हैं” मंत्री जी ने कंधे पर हाथ रख आत्मीयता का लपेटा फेंका तो पन्नालाल जैसे मोह से जागा। मंत्री जी उठे और भीड़ भी उनके साथ रेंग ली। पन्नालाल भीतर बाहर से निहायत अकेला हो आया।

मुख्यमंत्री जी के आ पहुँचने में मात्र दो रातों दो सुबहों का अंतराल था।

पहली रात ही इतनी भारी गुजरी कि सुबह का अभ्यास कर ही न सका। नींद देर से तो आई ही, उसके पीछे लगा सपना चला आया।

सपना कि...मुख्यमंत्री जी के मंच पर पन्नालाल साफे में सजा सुरों के संसार में खेल रहा है। सुर की लहर उठती है और इंद्रधनुषी रंगों में नहाती हुई आकाश को भेद आनंदलोक का स्पर्श करती है। बहत्तर अँगुल लंबी ताँबे के पँचकूट की तुरही पन्नालाल के ओठों पर फूल सी खिल उठी है। उधर मंत्री जी चीखे हैं...“बस हो गया...हो गया तूर्यनाद। अब मान्यवर के चरणों में रख दे तुरही। पन्नालाल! तुरही चरणों में रख और माँग ले! जो तू चाहता है।”

इंद्रधनुष के रंगों में तैरता पन्नालाल मानों अनंत ऊँचाई से फेंक दिया गया हो। कराह के साथ उसकी आँख खुल गई। फिर सो न सका वह। अभ्यास भी न हुआ। दिन भर मन को स्थिर करता रहा पर रात को फिर उसी दुःस्वप्न ने आ घेरा।

मंच पर से तुरही सुनने वाले हतप्रभ थे। पन्नालाल को क्या हुआ? ...ये तो अर्थी के आगे बजने वाले सुर हैं। एक दो ने खड़े होकर टोकना भी चाहा पर पन्ना की आँखें बंद थीं। राहत की बात यह कि मंचासीन मुख्यमंत्री जी मंत्री और कलेक्टर के साथ किसी घोषणा बाबत विचार विमर्श कर रहे थे।

कोई पवित्र युद्ध

वह ऐसे मुकाम पर आ पहुँचा कि अपनी मर्जी से आगे जाने की संभावना तो समाप्त ही थी; पीछे भी नहीं लौट सकता था। पीछे असंख्य सिर थे जिनमें लपट-सी कौंध मारती थी। उन सूखे, पपड़ाए चेहरों पर जाने क्यों उसके लिए अवज्ञा, क्षोभ और घृणा की वर्णमाला चिपका दी गई थी। उसके पीछे से आते सभी होंठों पर कोई हिंसक हुँकार थी जो उनकी दुर्दशा में उसकी भूमिका की प्रतिध्वनि की पहचान घोषित हो चुकी थी। अब और इस समय वह अपने भीतर से नितांत भयभीत इकाई है किंतु जाने क्यों राजन्य समुदाय उससे सशंकित है। तनबल, राजबल, धनबल से हीन इस आकृति को निशाना बनाए रखने में ही उनको स्वार्थ सधते प्रतीत होते हैं।

राजमार्ग की भीड़ ने उसे ठेलकर, धकियाकर बिलकुल किनारे कर दिया था। उसकी देह पर भीड़ की हिंकारत के गहरे नील पड़ गए। अनजान-सी फाँस जैसी टीस उसके रोओं में फुरहरी भर देती तो दृष्टि कोई ऐसा कोना टटोल उठती जहाँ थोड़ी आश्वस्ति के साथ ठहरकर वह गत आगत पर सोच सके। अपने बचे रहने का उद्योग कर सके। अस्तित्व-संकट के इस दौर में उसके साथ वाले कुछ लोग तो पलायन मात्र को ही विकल्प मान भविष्य का पीछा करते हुए दूर चले गए थे...और यह गमन निरंतर तेज होता जा रहा था। कभी-कभी उसे भी नगण्यता का कातर बोध आ घेरता है। ...वह भी कहीं चले जाने की सोच उठता है क्योंकि लांछन सहते जाने का उसका धैर्य भी चुक रहा है, पर...?

उसके कंधे पर जीर्ण पोटली लटकी है। इसका बोझ भी अब असह्य बनता जा रहा है। झोलीनुमा इस पोटली को दायों कंधा कसकने पर वह बाएँ कंधे पर ले लेता है तथा बाएँ के टीसने पर दाएँ। झोलीनुमा पोटली उसे विरासत में मिली है जिसे सौंपते हुए उसके कंगाल, रुग्ण पिता ने कहा था, “यह मेरे पिता ने सँभलवाई थी...उन्हें शायद उनके पिता ने सौंपी होगी जिन तक यह परपिता तथा वृद्ध पिताओं से होती हुई पहुँची होगी।” पिता उखड़ती साँसों को सहेजने के लिए थोड़ा रुके थे।

आँखों में सामर्थ्य समेटकर वह फिर बोले, “बेटा तुम्हें देने को मेरे पास भूमि है न धन। मनसबदारी हम कर ही कब पाए?...खैर...इसमें समय की कतरने हैं...कुछ महत्वपूर्ण होंगी और शायद कुछ फ़ालतू भी। सोना, चाँदी, लाल जवाहर की उम्मीद इससे न करना। इसमें तो स्मृतियों के रेशे तथा ज्ञान की गाँठें हैं...”

वह पिता का मुँह ताकने लगा तो आतुर पिता ने मुस्कुराने का असफल प्रयास किया, “बात समझ नहीं पाए।...मैं भी कहाँ समझ पाया था। मैंने भी तो संस्कारित श्रद्धा के कारण ही यह बोझ कंधों पर लिया था पर पिता फिर भी बोले थे कि मेरा तुम्हारा कुछ व्यक्तिगत नहीं है इसमें। हाँ आह्लाद, अवसाद के अँजुली भर दिन-रात व धन्य, धिक्कार के उँगलियों पर गिनने लायक घड़ी पल ज़रूर इसके एक कोने में अटके हैं।”

बताते-बताते पिता के चेहरे पर गहरी थकान दिखाई दी। उन्होंने पलभर को आँखें बंद कर लीं और तेज़ चलती साँस पर क़ाबू करने लगे थे। वह पिता की सफ़ेद रोओं से भरी सूखी छाती सहलाने लगा। आँसू दुलकाती माँ पहले से ही तलवे पर तेल मल रही थी। बहन पिता की खाट के पाए से सटी इस तरह खड़ी थी जैसे इस नितांत घरेलू दृश्य में अयाचित आ पहुँची हो।

साँसों व सामर्थ्य बटोरकर पिता फिर बोले, “जय पराजय की स्तुति-निंदा के अतिरिक्त इसमें भविष्य की भावानुकूल कल्पना भी है।...जीवन की न्यूनतम ज़रूरतें जुटाने के बीच जब भी मुझे अवकाश मिला; मैंने इस पोटली को पलटने, पढ़ने, परखने की कोशिश की है। सुनो बेटे! आना और जाना इस संसार का सबसे बड़ा सत्य है। एक बात जिसे मेरे पिता पूरे विश्वास के साथ कह गए वह मैं किंचित् संकोच के साथ कह पा रहा हूँ...यह कि...हाँ इसे उपदेश या प्रवचन की कोटि में न लेना...वह यह कि...अर्थ इतिहास के किसी भी कालवृत्त का केंद्रीय सत्य नहीं रहा। यह सदैव संचारी सत्य रहा है। विस्तार में जाने का न तो मेरे पास समय बचा है और न तुम्हें अवकाश है; बस मानना चाहो तो इतना मान लो कि सोने की लंका वाले रावण से लेकर उदय से अस्त तक साम्राज्य वाली एलिजाबेथ तक सभी कृमिकीट योग्य देह छोड़कर ही गए।...हाँ मुझसे श्रेष्ठ अंत नहीं रहा किसी भी श्री शक्ति केंद्र का।...छोड़ो इसे।” पिता ने पीड़ा में डूबी बड़ी कठिन साँस ली। “मैं अपने जीवन का पाथेय जुटाने की लड़ाई में ऐसा उलझ गया कि इन कतरनों के आगे अपने समय को नहीं जोड़ पाया। तुमसे प्रतिज्ञा नहीं ले रहा। प्रतिज्ञाओं के प्रति अब आस्था नहीं रही। प्रतिज्ञा अब छल का साधन भी बनने लगी है...। तुम...तुम्हारा समय...तुम्हारा संघर्ष मुझसे कहीं अधिक कठिन होगा। मैं अपना समय दर्ज न कर पाने की ग्लानि के साथ जा रहा हूँ और यह लालसा लिए कि अपनी लड़ाई में से थोड़ा-सा अवकाश निकाल तुम इस गठरी में बाँधे

काल का निरीक्षण-परीक्षण कर इसमें अपने समय का भी कुछ जोड़ोगे...। इस जर्जर पुरानी झोली में काल की छोटी-सी किरच छोड़ जाना भी खज़ाना छोड़ जाने से कम नहीं है...तुम...।”

पिता की आँखों में उम्मीद की कोई दीप्ति उभरी थी जिसे लिए दिए उनकी पलकें बंद हो गईं।

पिता की इसी पवित्र धरोहर को धरे-धरे वह उपेक्षा, तिरस्कार और भय भरे जीवन की कठिन चढ़ाई चढ़ रहा है। सफल पुत्र से लड़ने का साहस किसी पिता को नहीं होता पर उसके पिता तो असफलता पर भी उससे नहीं लड़े। समय के सूर्य का ताप उसके सिर पर आ गया है। पाँव निराशा और थकान से भारी हैं...। इस स्थिति में हाथ का कंगन और गले की माला का भार भी दुस्सह होता है जबकि उसके कंधे पर सदियों भरा झोला झूल रहा है।

रोज़ी-रोटी का पीछा करता हुआ वह शायद राजपथ पर आ पहुँचा था। भव्य राजपथ के अगल-बगल भी सब कुछ भव्य है—भवन, भोग और भक्ति भी। सजे-सँवरे जगमग प्रदर्शन कक्ष हैं—राजनीति, धर्म, व्यवसाय के...। अनन्य सुरक्षा-संपन्न इस संसार में या तो विशिष्ट का प्रवेश संभव है या विशेष प्रेरित भीड़ का। तराशी हुई तख़्तीयाँ, चमकते बैनर व भड़कीले नारों से हलचल मचाती भीड़ का रेला राजभवन की ओर मुँह उठाए बढ़ा जा रहा था। उसे चुप, चकित, निरीह तथा भीड़ से अलग देख एक सिपाही ने छेक लिया, “ऐ! किधर जा रहा है?”

“नहीं पता कि कहाँ जाना है?...रोज़ी-रोटी के उद्योग में हूँ।” स्वर में विनय भरकर बोला वह। शास्त्रों में उसने पढ़ा था कि राजन्य के समक्ष विनीत रहना चाहिए।

उसके उत्तर ने सिपाही को संदेह का अवसर दिया। राजपथ पर अब रोज़ी-रोटी की चर्चा कौन करता है। यहाँ अधिक पाने, झटकने, छीनने की बात होती है...शेयर और सुंदरियों के उतार-चढ़ाव, विकास के बारे में सोचा जाता है...एक्टरों, क्रिकेटरों के सुख-साधनों की चिंता होती है। ऐसे ही और भी विषय हैं।

भौहों पर बल डालकर इस सशस्त्र रक्षक ने उसका कंधा पकड़ आँखों में अंगार भर लिए, “इस गठरी में क्या है?”

वह सहम गया, “मैं अभी इसे देख नहीं पाया हूँ...। भूख ने इस ओर सोचने का अवकाश ही नहीं दिया।” आवाज़ में अब भी वही विनय थी।

“इसमें काहे की गंध है?” सिपाही ने नथुने फुलाते हुए पूछा।

“हो सकता है...कुछ तीखी कतरनें हों।”

“बदबू आ रही है बे...इसमें से।” सशस्त्र रक्षक ने गठरी झटक की। वह लड़खड़ाकर गिरते-गिरते बचा।

“भाई! इसमें पुरानी चीजें हैं, ...संभव है कोई सड़ने लगी हो।...पर आपका मेरे साथ यह व्यवहार ठीक नहीं, मतलब...अभद्र है।” वह थोड़ा खीझ गया।

“अभद्र...। अच्छा...। अभी तूने अभद्रता देखी कहाँ है...आज दिख जाएगी...इस रैली को निकलने दे।” सुरक्षाकर्मी मिसमिसाया।

“देखिए...मैं एक पढ़ा-लिखा नागरिक हूँ...आप...।”

“हाँ तभी तो फटेहाल हुलिया बनाकर आँखों में धूल झाँकना चाहता है...। पोटली में क्या है? तस्करी की चीजें? ...विस्फोटक या दस्तावेज?”

“आप...आप बेसिर-पैर का आरोप लगा रहे हैं।” वह भय से पीला पड़ता बौखला उठा। माथे पर पसीना चुहचुहा आया। आवाज़ गले में फँसने लगी। एक आम नागरिक की भाँति वह भी पुलिस से डरता रहा है। इस स्वतंत्र देश में स्वतंत्रता का सबसे बड़ा उदाहरण पुलिस है।

“आरोप लगा रहे हैं...ऐं?...हम सिद्ध भी कर सकते हैं...। उड़ती चिड़िया का वजन तौल लेते हैं हम। चल इधर...।” सशस्त्र वर्दी ने उसकी बाँह ऐंठकर उलटा कर लिया।

राजपथ पर रेला घना व तीव्र हो गया। लाउड स्पीकर सैकड़ों गुना शोर में चीख रहे थे। गर्मी, उमस, फूलती नसों वाले गले के ऊपर तमतमाते सिर। इतना शोर कि बस शोर ही सुनाई पड़ रहा था। मुट्ठियाँ तानते, लाठियाँ लहराते प्रवाह ने आसपास का सब कुछ ठप कर दिया। अगल-बगल की चौकसी में बंद भव्यता खिड़कियों से झाँकती, रेलों के गुज़रने की बाट देख रही थी। ये उसके लिए मनोरंजन व कारोबार का हिस्सा है। ऐसे तमाशे कभी-कभार तो वही प्रायोजित करते हैं। वह भली-भाँति जानते हैं कि न्याय और तर्क की दुहाई देकर सत्ता की सीढ़ी चढ़नेवाली दुनिया तर्क और न्याय पर नहीं एक व्यापक सनकीपन से चलती है।

सिपाही फ़िलहाल राजनैतिक व्यवस्था में था। झंडों, डंडों, शोर से घिरा नेतृत्व खुली गाड़ी में भीड़ की उत्तेजना का उत्साह बढ़ाता सिपाही के सामने आ पहुँचा था। सिपाही का ध्यान बँटते ही वह अपने आपको बचाने एक दरबानदार गेट पर पहुँच तेज़ी से भीतर प्रवेश कर गया।

भीतर एक भद्र औपचारिक ठंडी शांति थी। कंप्यूटरी टेबलों के पीछे मॉनीटरों पर निगाह जमाए सिरों का एक छोटा-सा सिलसिला था। लगा कि वह अत्यंत व्यवस्थित, निर्धारित, परिचालित मंडल में आ धँसा है...। समझने की कोशिश में ही था कि मधुर, महीन, मशीनी आवाज़ सुनाई दी, “मे आई हेल्प यू?”

उसने सतर्क सारस की तरह गर्दन घुमाई कि आवाज़ कहाँ से आ रही है।

दाहिनी ओर के काउंटर पर एक चुस्त-दुरुस्त छवि उसे अपनी ओर ताकती दिखी। इस बार वह कॉन्वेंटी हिंदी में बोली, “कृपया अपने आने का प्रयोजन कहें?”

वह काउंटर की ओर मुड़ गया क्योंकि दरबान भी भीतर आ पहुँचा था और उसकी मुद्रा बता रही थी कि अभी गरदनियाँ मारकर बाहर फेंक देगा।

“जी!...मैं अपने आपको और इस गठरी को बचाना चाहता हूँ। बाहर की स्थिति ऐसी है कि मैं और गठरी दोनों ही ख़तरे में हैं।” वह शीघ्रता से बोल गया।

“क्या है इस झोली में...?” आवाज़ उत्सुक और तटस्थ-सी लगी।

“बस इतना जानता हूँ कि इसमें समय की इबारतें हैं। शायद बहुत...बहुत ही मूल्यवान या शायद नितांत निरर्थक। पिता ने कहा था कि इसमें संवत्सरों के अनुभव व मन्वन्तरों के ज्ञान कण हैं और...।”

“ठीक है, समझ लिया।...बेचना चाहते हो?” वही मृदुल तटस्थ स्वर पूछ रहा था।

“हम तुम्हें सुरक्षा, संपत्ति, साधन सब उपलब्ध कराएँगे।”

“आपने मुझे ग़लत समझा है। मैं सुरक्षा चाहता हूँ...मेरी ज़रूरतें भी हैं। हाँ विपन्न भी हूँ मैं।...पर बिकाऊ नहीं हूँ। इस गठरी में भी सबका समय है, सबकी स्मृतियाँ हैं। अकेली मेरी हथेली का न्यास नहीं है। मैं तो संयोगवश ही इस थाती का धाता हूँ।”

मीठा स्वर किंचित् तीक्ष्ण हुआ, “इसमें क्या और किसका है यह तय करना हमारा काम है। तुम्हें तो बस हाँ या ना में उत्तर देना है। बोलो, बेचोगे?”

उसकी दुर्बल काया में कोई पारा-सा एड़ी से चोटी तक दौड़ा।...मुट्ठियाँ झोली पर कस गईं...आँखों में संकल्प उगा और मुँह से आवाज़ निकली, “नहीं!”

एक इशारे पर वह बाहर धकेल दिया गया। सिपाही के दो-तीन साथी और एकत्र हो गए थे। उन सबकी निगाहें उसे ही खोज रही थीं। यह रेलों की पूँछ थी। जाति की जिंदाबादी हुँकार राजपथ पर आगे बढ़ गई इसलिए इन सशस्त्र रक्षकों के माथे पर का हल्का-सा तनाव हट गया था। तनाव के स्थान पर अब आखेट भाव था।

“वो रहा साला...। पकड़ो!” वर्दी चिल्लाई।

उसने बचने के लिए भागना चाहा पर तुरंत ही खयाल आया कि भागे कहाँ?...और भागे भी क्यों? भागना किसी भी दुष्ट मौसम का हल नहीं है।...कहीं -न-कहीं किसी-न-किसी तरह लड़ना तो पड़ेगा। इस समय वह समझ पा रहा था कि कोई कायर तर्क उसके भीतर आ बैठा है, जो डराने के भद्र बहाने निकाल-निकालकर उसे अपने आपको झाँक देने से रोक देता है। शायद उसका पवित्र पिता, पितामह, परपितामह आदि भी सीधे युद्ध से बचते रहे हैं...। वह सोच रहा था

कि चार सिपाहियों ने घेरकर कंधे की झोली, गठरी, पोटली; जो भी नाम कोई देना चाहे; उनको छीनकर गाँठ खोल उलट दी...।

हवा किसी भी दिशा से किसी भी दिशा को बहे, वह उड़ती ही है। गठरी की कतरनें, रेशे, विचार, स्मृतियाँ राजपथ पर लावारिस से उड़ने लगे। तेज़ धूप में कोई मत कौंध मार रहा था तो किसी में से बासी गंध निकल रही थी।

सिपाही हर चीज़ को परखती निगाहों से तोल रहे थे। वह लुटा पिटा-सा अवाक्, हतप्रभ राजपथ पर खड़ा था। गठरी की वस्तुएँ इधर से उधर उड़ रही थीं, सरक रही थीं, फिसल रही थीं। किसी-किसी कतरन में तो इतना पुराना समय था कि थोड़े से दबाव पर ही तिरक जाता। एक कल्पना डाल से छिटके पत्ते की भाँति उड़ती हुई नाली में जा पड़ी थी। उसने दौड़कर उस मासूम कल्पना को सहेजना चाहा कि भवन के पाइप से कोई तेज़ बहाव आया...वह ऊब-डूब होती नाली में बह गई।

लगा कि उसके दिमाग की नसें फट गई हैं...बदहवास होता वह कभी इस वस्तु को पकड़ने की कोशिश करता कभी दूसरी को। सिपाही अपनी पेशेवर सक्रियता के साथ कतरनों, विचारों, स्मृतियों में उसके विरुद्ध प्रमाण की छानबीन में थे। इस समय जब सूरज ठीक उसके सिर पर तप रहा था...नीचे ज़मीन में जलन आ बैठी थी और उसके सिर पर न साबुत अँगोछा था, न पैरों में जूते; तब बिखरती बहती और असावधान हाथों द्वारा उलटी पलटी जाती थाती को बचाने का आखिर उपाय क्या था उसके पास?

वह राजपथ के बीचों-बीच खड़ा होकर चीखने लगा, “सदियों की इस संचित निधि को हमारे पूर्वजों ने भूखे-प्यासे रहकर, अभाव जीते हुए, स्वयं को होम कर, गलाकर मेरे तुम्हारे समय तक पहुँचाया है। इसे लिप्सा के हाथों नष्ट होने से बचा लीजिए। ...आखिर अगली पीढ़ी को भी तो हमें कुछ सौंपना है...।”

वह चीखने की हद तक चीखे जा रहा था और लोग अपने ठंडे सुख की खिड़कियों से उसकी पागल हरकतें देख रहे थे।

अंकगणित में विदूषक

उड़ती-उड़ती कुछ खबरें आ पहुँची थीं कि इन दिनों संसद संकट से गुज़र रहा है। कुछ चीज़ें ऐसी पतिव्रता क्रिस्म की होती हैं कि बात-बात पर खतरे में पड़ जाती हैं। यूँ होता यह भी है कि दृढ़ हो जाएँ तो सावित्री की भाँति यमराज से लोहा ले डालें पर स्वभाव में वह कोमलता भी कि स्वयं पर आक्रमण करने वाले अफ़जल जैसों के प्राणदंड पर भी पुनर्विचार कर मन बनाने लगें कि हाय!...इन्हें भी तो बने रहना चाहिए। ऐसा कुछ करने को।

इस बार विप्लव अंक-प्रणाली के कारण कुनमुनाया। सब मानते थे कि संख्या व्यवस्था अपरिहार्य है। निष्कर्ष या परिणाम तक पहुँचने के दो ही दस्तूर चले आए हैं कि सही ग़लत या तो सिर गिनकर तय हो या सिर काटकर। लोकतंत्र गिनती पर आधारित है। काटने का अनुष्ठान अखंड रामायण की तर्ज़ पर अर्थ, लय की परवाह बिना श्रद्धा के तहत पर होता है। मतभेद किसी माननीय के इस प्रश्न को उठाने से सामने आया कि, “माननीय! यह मॉडल अमेरिकी दिखता है इसलिए मान्य नहीं किया जाना चाहिए...।” दूसरे किसी माननीय ने टोका, “आपका मॉडल तो जगह-जगह से दरक चुका है। क्या उसे लागू करना चाहते हैं?”

“माननीय महोदय! बात को ग़लत मोड़ दे रहे हैं...इनकी यही आदत है...।”

“चलो कोई तीसरा देख लीजिए...व्यर्थ विवाद में सदन का मूल्यवान समय नष्ट क्यों करते हैं...?”

“तीसरे लोकतंत्र में तो बंदूक की सत्ता है...असहमतों पर धाँय-धाँय...।” एक अन्य माननीय ने आपत्ति की।

एक सुझाव यह भी था कि सबको मिलाकर कुछ ऐसा प्रारूप खोजा जाना चाहिए जो हिन्दोस्तानी नज़र आए। हुआ यह कि बातचीत लाभ-हानि के विवाद में बदल गई। मतभेद इतने तीव्र हुए कि अध्यक्ष के कक्ष में आहूत सर्वदलीय बैठक संसदीय होते-होते बची।

फिर भी और जैसे भी बना हो सरकार पहले ही पूरा मन बना चुकी थी। फ़ायदा भी एक फ़ायदा है देश-दुनिया का। बैठकें तो मुहर लगाने बुलानी पड़ती हैं। बैठक में विधेयक प्रस्तुत होते ही हल्की भिनभिनाहट हुई...फिर शोर होने लगा। हल्ले के साथ चिंदी, पन्ने सदन में उड़े। वाक्युद्ध में शारीरिक हस्तक्षेप...फिर तो माइक, पेपरवेट, हथ्ये प्रयुक्त होने लगे। इस बहस की आँच माननीय सदस्याओं तक पहुँची, तब कहीं कार्यवाही स्थगित हुई...। इसी बीच अंक नियम पारित हो गया था। विधेयक में संसाधन मंत्रालय की तर्ज पर अंक आराधन मंत्रालय की आवश्यकता रेखांकित हुई। तय हुआ कि अंक विधान गाँवों से आरंभ किया जाए क्योंकि बताया जाता है कि मंदर इंडिया जो पहले भारत माता होती थी; उधर ही रहती थी। आरक्षण प्रणाली भी पंचायत स्तर से ही आरंभ कर निर्धारित किया गया है कि यहाँ प्रधान का पद महिला का होगा...या अनुसूचित जाति/जनजाति का व्यक्ति ही प्रधान बनेगा (भले वहाँ कोई न हो इस वर्ग से)। केंद्र व राज्य के प्रधान तक इस नियम की पहुँच नहीं है।

नए विधान को गाँव में पहुँचाने के लिए सजीली, चुटीली, लजीली भाषा में विज्ञापन निकले, सूचनाएँ जारी हुई और दूरदर्शनी बहसों के अनुष्ठान होने लगे। एक दिन ग्राम-भवन पर तीसरे दर्जे वाले प्रशासनिक अधिकारी की उपस्थिति में चौथे दर्जे के कर्मचारी यानी पटवारी ने वह सूची चस्पा कर दी जिसमें आदमी नाम की जगह अंक हो गया था। अंतिम प्रकाशन से पहले दावा आपत्तियों के लिए तीन दिन का समय जनता को मिला था। यह एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया है जो हो, न हो...पर हो रही होती दिखना चाहिए।

किसी को कोई आपत्ति न थी। रही भी होगी तो प्रकट नहीं की गई। बहुत से लोग तो पढ़ने भी नहीं पहुँचे। अधिकतर ने अपने परिवार-जनों के नाम पढ़े। चुनावी दिलचस्पी वालों ने समर्थकों के साथ-साथ विरोधी कुनबों पर भी गौर की कि कहीं फर्जी तो नहीं ठुँसवा दिए। चुनावों में अब घुसपैठी-मत भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्रशासनिक अधिकारी ने दूसरे गाँव के लिए पीठ फेरी तो कारू लोगों ने पटल पर चिपके पन्ने उपाट लिए। सरकारी कार्यवाही इसी तरह होती है कि सार्वजनिक चीज़ व्यक्तिगत ऋञ्जे में पहुँच जाती है।

आज सबसे पहले अपना नंबर गज्जू लाया। ब्लॉक आफ़िस में लटकी सूची से उसने उतारा था—एम.जी.एच. थर्टी सेवन। अपने नाम से बड़ा नाम पाकर वह थोड़ा असहज हुआ था कि गजेन्द्र को इस तरह तान क्यों दिया गया। कार्यालय के बाबू ने ही समझाया कि इस नंबर में पहले जाति है—एम यानी महतो, जी तो गजेन्द्र है ही...एच से पता चलता है कि वह हिंदू है। ...तो नाम से ही सब

कुछ साफ़ हो जाता है ना! चुनाव वग़ैरह के समय इससे बहुत मदद मिलती है। गज्जू को अनुभव हुआ कि वह हिंदी से अंग्रेज़ी हो गया है इसलिए हाईस्कूल पास होने के कारण वह अंग्रेज़ी बोलता हुआ गाँव में घुसा था, ‘लिसिन...लिसिन! आई एम नॉट गजेंद्र...नाऊ आई एम एम जी एच थर्टी सेविन।’

“भाँग पी आया है कै दारू चढ़ाई है। ऊँट की बोली बोल रहा है।” रामरतन हँसने लगे। भैंस की पीठ पर घूँसा मारते उन्होंने फिर पूछा, “का गिटपिट बक रहा है रे गजुआ?”

“ऐ कक्का! मैं अब नाम नहीं नंबर हूँ। आई एम नॉट गजुआ...आई एम थर्टी सेवन। खसरा खतौनी खेत के नंबर होते हैं वैसे ही नाम की जगह नंबर लिखा जाएगा। गाँव का हर आदमी अब नंबर में बदलेगा।”

“और बाप के ठौर भी नंबर लिखा जावेगा का?...गजुआ वल्द दस या बारह की संख्या लिखी जाएगी?...बोल!” रामरतन ने भौंहों पर बल डाल सोच में पड़ते हुए पूछा। घूँसा मारता उनका दायाँ हाथ भैंस के पुट्टे पर धरा रह गया था।

गजेन्द्र कुछ पल के लिए अचकचाया फिर जैसा कि वह अपने चिंतन के क्षणों में करता है...अपना सिर खुजलाने लगा। उसने एक नज़र आसमान की ओर फेंकी, उँगलियाँ चटकाई और भैंस के साथ चार कदम आगे बढ़ गए रामरतन की बगल में पहुँच बोला, “वल्दियत की ज़रूरत ही खत्म हो जाएगी। देखते नहीं! ...कार का नंबर, ट्रैक्टर का नंबर, मोटर सायकिल और ट्रक का नंबर। घर भी अब नंबर हो गए। ...तो नंबर वाली चीज़ का कोई मालिक होता है; माँ बाप नहीं।”

घड़ी भर में ही खबर पूरे गाँव में गनगना गई कि गज्जू नंबर हो गया है और लिस्ट आते ही हर आदमी नंबर हो जाएगा। घर परिवार का शजरा खत्म। अगली पीढ़ी को जानने की ज़रूरत ही नहीं कि कौन दादा, कौन परदादा। इतिहास की झंझट समाप्त...। इतिहास का अंत...।

पंडित देवदत्त तिवारी अपनी तरह के संकट में फँस गए, “तो भैया! दान दक्षिणा का संकल्प करवाते का हम नंबर उच्चारण करेंगे? तीन पीढ़ी का बखान करना होता है, अमुकस्य पुत्र, अमुकस्य पौत्र; प्रपौत्र...स्थान, क्षेत्र, देश, काल...?

समझदारों ने समाधान किया, “हो सकता है सब कुछ संख्या में समा जाए। शायद भगवानों को भी नंबर मिले।”

“और क्या? ...हाँ पहले नंबर पर श्री गणेश जी होंगे”, प्रहलाद जोशी ने आँख मूँद श्रद्धा के साथ हाथ जोड़े।

क्या उनको ही वन कहा जाएगा? देवता नं. एक...?”

“डी वन से काम नहीं चलेगा। इससे रूढ़ि फैलेगा और धर्मों के भी तो देवता हैं। इन्हें एच.डी.वन कहना पड़ेगा। अर्थात् हिंदू देवता नं. एक...।” देवकांत खटिक के लड़के अशोक ने संशोधन प्रस्तुत किया। वह शहर में विज्ञान का छात्र है इसलिए अपनी जानकारी को प्रामाणिक मानता है।

“बेटा अशोक! तू तो शहर में रोज़ अख़बार पढ़ता है...टी.वी. देखता है। मंत्री, अफ़सरों का आना-जाना होता है उधर। ये बता कि नेताओं पर भी नंबर पड़ेंगे?” शोभा बघेले ने सवाल सरकाया।

“बिल्कुल...। प्रधानमंत्री पहले नंबर पर होंगे,...नहीं नहीं होना तो राष्ट्रपति महोदय को चाहिए...पर...।” अशोक उलझन में पड़ गया। अटपटे क़ानून में उलटबासियाँ भी ख़ूब चलती हैं।

“राष्ट्रपति को सुन्न बना दो। का परेशानी है। सुन्न सबसे बड़ा होता है...और कलू भी नहीं। आगे कर लो बढ़ाय देगा...पीछे डाल लो घटाय देगा।”

इन्हीं और ऐसी ही चर्चाओं के बीच आपत्तियों वाला तीसरा दिन निकल गया। यहाँ दिन महीने वर्ष और जीवन भी ऐसे ही बीत जाते हैं। जो होना होता है...होता रहता है। स्वतंत्रता मिली...बहुत अच्छी बात है। नहीं मिली थी, तब भी कट ही रही थी। पहले राज्य में एक राजा होता था अब राजधानी से रास्ते तक राजा ही राजा हैं।

आज़ादी के साठ साल बाद भी गाँव की कुछ व्यस्तताएँ शेष हैं—जैसे सुबह देर तक सो नहीं सकते...सूरज सिर पर आ खड़ा होता है। गायें, भैंसे, बकरियाँ, भेड़ें, मुर्गी मुर्गे, चिड़ियाँ, मक्खियाँ सभी तो चीखने लगते हैं, “उठो! ...उठो! फिर दुहाऊ, फरागती, सानीपानी और अकाल दुकाल के चलते भी दर्द देते खेत और सूने खलिहान का एकाध चक्कर। सबसे बड़ी समस्या कि पानी पाताल की ओर उतर गया है। नदी सूखी, कुएँ बेनीर, मशीनों के आगे कुदरत हार गई। धरती की नसों तक से पानी चूस लिया। फिर भी गहरे में अभी भी कुछ बचा है कि हरियाली की साँसें नहीं टूटें।

सुना जाता है कि देश की हरियाली बचाने के लिए विदेशी कंपनियों को आकर्षित किया जा रहा है। वे आने को सहमत हैं पर अपनी शर्तों पर। कंपनियों का आकलन है कि भारतीय पानी का बहुत अपव्यय करते हैं। एक एक आदमी शौच के लिए ही दस दस लीटर तक पानी बहा देता है। नहाने में घंटों पानी लुढ़काते हैं। फिर इनके देवता भी हमेशा तर रहना चाहते हैं। सबसे बड़ी समस्या यह है कि पानी वग़ैरा को ईश्वरीय देन मानकर ये मुफ्त का माल समझते हैं। इन्हें पानी का मूल्य सिखाना पड़ेगा। इनकी मानसिकता बदलनी होगी। पानी ख़रीदकर पीने की आदत डालनी होगी...अपव्यय आपसे रुक जाएगा।

तब का गज्जू और अब एम.जी.एच. थर्टी सेवन ने ही ख़बर दी थी कि कंपनियों के लिए ज़मीन समतल करने में सरकारी लोग जी-जान से जुटे हैं—जैसे ही लाभ-हानि की जोड़बाक़ी अनुकूल होगी कंपनियाँ ‘हाऊ टू यूज’ सिखाने आ पहुँचेंगी।

ख़ैर तीसरा दिन हो गया तो लोगों ने मानना शुरू कर दिया कि वे कोई नाम नहीं नंबर हैं। हर मोहल्ले में कोई फ़ौट्टी टू, कोई सेविन्टी एट अथवा सिक्स्टी फोर कहलाने लगा। एक सुविधा महिलाओं को अवश्य हुई कि वे अभी तक पति का नाम न लेने की परंपरा के निर्वाह में—ऐ जी! ओ पप्पू के पापा या लाली के बापू आदि कहकर काम चलाती थीं अब इस तरह चर्चा करने लगीं—

“काये किशनपुर वाली। आजकल तो आठ नंबर वाले से गाढ़ी छन रही है...?”

“बस ठीक ई है जिज्जी! इनमें वो चालाकी चतुराई कहाँ जो तुम्हारे छठवें में है।”

“चलो मान लेते हैं पर परसों अठारवें तो इसे फटफटिया पर बैठाकर ले गए थे कहीं...।”

“और सुनो! बाईसवाँ तो इतना बेशर्म है कि दिन देखे न रात उसे सदा ठिठोली की पड़ी रहती है।”

“छियासी वाली भी कोई कम नहीं...घूँघट भीतर आँख मिचकाती है।”

“कम तो तीन सौ छिहत्तरवाली भी नहीं। पदमिनी समझती है अपने आपको।”

देश का सारा कारोबार अब संख्या केंद्रित, संख्या निर्भर हो रहा था। नेता संख्या की बात करते। चिंतक देश के आगे होने या पीछे जाने का हिसाब लगाते। क्रिकेट और फ़िल्मी एक्टर पोलियो की खुराक और एड्स की तर्ज पर संदेश बाँटते नज़र आने लगे। अख़बारों में विज्ञापनों के साथ समर्थ मंत्रियों के फोटो छप उठे। बजट का एक हिस्सा विज्ञापन के लिए निर्धारित हुआ।

सरकार भले संख्या पर ठहरी हो पर जीवन अपनी लय में चल रहा था। असम में बिहारी मर रहे थे और कश्मीर में बचे खुचे भट्ट। कभी दलित सेना प्रताप दिखा देती तो कभी भूमि सेना। डाकू और पुलिस तो सदियों की कहानी है। सीमा पर शांति भंग न करनेवाली धूँ-धांय होती ही रही। अर्थात् ऐसा ख़राब कुछ नहीं था जो पहले से अधिक लगे दिन इस तरह भी गुज़रने लगे। यूँ भी हमारे गाँव का आदमी ग़ज़ब का सहनशील और महान भाग्यवादी है। अब तो यह भी जान गया है कि उसके कहे सुने तो कुछ होगा नहीं। जो हो रहा है उसी के बीच जीने की जुगत निकालो। चोट जोर की लगती है तब रोता चिल्लाता है। लड़ता तब

भी नहीं है। ...हाँ जाति धर्म का सवाल हो तो भिड़ जाता है...फिर चाहे चुनाव हो या दंगा।

आग आई कहीं से हो पर सुलगी हमारे पड़ोसी शहर से। नंबर नियम को युक्तियुक्त बनाने की माँग लेकर एक छोटा-सा मशाल जुलूस निकला कि इस कानून में धार्मिक सामाजिक पहचान का ध्यान नहीं रखा गया है तथा कुछ नंबर आरक्षित करने की भी माँग हुई। राजधानी में नंबर एक वाली गुत्थी अभी ज्यों की त्यों थी। झगड़ा नंबर दो पर भी सामने आया कि यह सुविधा सरकार के पास रहे या प्रतिपक्ष को दी जाए। बुद्धिजीवी बहस के पक्ष में थे कि सरकार इस बाबत राष्ट्रीय बुद्धिजीवियों के लिए सेमिनारों, श्रृंखलाओं, रैलियों के साधन उपलब्ध कराए। अंतर्राष्ट्रीय बुद्धिजीवियों को अध्ययन, शोध आदि हेतु विदेश भेजे। ये सारी सूचनाएँ हमें कभी अखबार से, भूले-भटके बिजली आ जाए तो टेलीविजन से और अक्सर एम.जी.एच. थर्टी सेवन के जरिए मिलतीं। थर्टी सेवन को शहर का चस्का था...अनपढ़ नहीं, अधपढ़ था। उसके हिस्से में गाँव की दयनीय चालाकी थी। वह अनजान बन खोद-खोदकर जानकारी लेता और शहर के लोग उसका मज़ा लेते। उन लोगों की निगाह में वह विदूषक था और उसे भी लगता कि इन लोगों के बीच विदूषक बने रहने में ही लाभ है।

थर्टी सेवन ने शहर से लौटकर सायकिल टिकाई। कई सूचनाएँ उसके दिमाग में जमा थीं और वह उन्हें क्रम दे रहा था कि पत्नी ने लोटे की जगह गिलास हाथ में थमाते सूचना दी कि, “अब तक काम चलाते रहनेवाला हैंडपंप भी जवाब दे गया।...आज नहाना-धोना नहीं हुआ। भैंस अधप्यासी खड़ी है। रात भर के लिए बस एक कलसा पानी है इसलिए हाथ मुँह धोने में बर्बाद मत करना।”

थर्टी सेवन अपनी प्यास भूल पत्नी का मुँह ताकता रह गया। उसने आज गौर किया कि, “अच्छी भली होने के बावजूद हमारी औरतें कितने भोंडेपन से रहती हैं। शहर में देखो। अधेड़ भी जवान बछेरी नज़र आती हैं। फ़िल्मों में तो बालों के सिवाय कुछ भी बूढ़ा नहीं होता।”

वह गिलास हाथ में ले घूँट भरने को था कि पत्नी ने दूसरी वो ख़बर सुनाई कि शहर से राजधानी तक की सारी सूचनाएँ कपूर की तरह उसके दिमाग से उड़ गईं।, “रामदीन और उसकी घरवाली ने पहले अपने तीनों बच्चों को ज़हरीली गोलीयाँ खिलाई और बच्चों को शांत कर पति-पत्नी ने भी गटक लीं। पति घर भीतर चल बसा और पत्नी अस्पताल ले जाते शहर के रास्ते में।”

“चलो अच्छा हुआ।”, थर्टी सेवन उर्फ़ गजेन्द्र के मुँह से डूबती आवाज़ निकली। पसीने से भरे माथे पर पीलापन तैर गया। आँखों से पता नहीं चलता कि देख रही हैं या अंधे की तरह सूनी हैं।

पत्नी ने कुछ देर ध्यान न दिया पर जब देखा कि वह न पी रहा है न कुल्ला कर रहा है पर गिलास टाँगे जाने कहाँ किसे देख रहा है...हिलना-डुलना तक बंद है तो कुछ घबरा उठी।, “ऐ का हुआ?”

“अच्छा ही हुआ।” उसके पति की ही आवाज़ थी पर कोसों दूर से आती हुई।

“का अच्छा हुआ? पानी तो पियो। ऐसे का ताक रहे हो?”...पत्नी ने रुआँसी होते हुए गजेन्द्र उर्फ़ थर्टी सेवन के कंधे हिलाए।

“अच्छा ये हुआ कि रामदीन आज ही मर गया। कल तो उसे मरना ही था...परसों उसके बच्चे भी मरते। जितना अधिक जीता उतना ही अधिक भोगना पड़ता ना उसे? जीता भी रहता तो क्या करता?...जैसे तैसे पेट का गढ़ा भरता रहता...वोट देता रहता। मर कर वह कम-से-कम ख़बर तो बन जाएगा।”

पत्नी अब तक इस निष्कर्ष पर पहुँच चुकी थी कि उसके पति के दिमाग पर गर्मी चढ़ गई है। वह तेज़ी से भीतर गई और पानी का एकमात्र कलसा उठा लाई, ‘सुनो! हल्के-हल्के थपकी मारो खोपड़ी पै’, कह उसने गजेन्द्र उर्फ़ थर्टी सेवन के सिर पर पानी की धार छोड़ी।

“अरे रे...पागल हो गई का।” गीला होता थर्टी सेवन बौखला गया।

“हाँ मैं पागल हूँ और तुम जो रोज़-रोज़ सात कोस शहर आते-जाते हो साइकिल से सो...? ...कोई कमाई है? ...नौकरी चाकरी, काम धाम है? कौन बैठा है तुम्हारा वहाँ? ...का लगते हैं शहरवाले तुम्हारे? ...बेकूफ मानते हैं तुम्हें वो। ...हँसते हैं तुम पर। काये टकटकी लगाए रहते हो उधर?” सिर पर धार छोड़ती पत्नी आँसू टपकाने लगी।

गजेन्द्र अब बदहवास हो उठा, “अब बंद भी कर ये पागलपन। अभी पानी का रोना रो रही थी और जो हाथ पास था वो भी सिर पर उँडेल दिया। आखिर हो क्या गया है यहाँ सबको?” अपने आप से लड़ता वह घर से बाहर निकल आया।

वह सोचना चाहता था...अपने बारे में...घर गाँव-आसपास के बारे में। चाहता था कि कोई उसकी बात करे। खेत-खलिहान घर-घूरे की पूछे। इसी आशा में तो वह रोज़-रोज़ शहर भागता है...ख़बरें लेता है किंतु वहाँ हर ओर फ़िल्मी और क्रिकेट के छाया-नायकों के चर्चे गूँजते हैं। इन नायकों ने जवानी को रातोंरात अमीर होने का सपना दिया है...ऐश्वर्य और ऐश्वर्या...कर लो दुनिया मुट्ठी में। हाँ इस दौर में तस्कर, शूटर, हंटर ही नायक हैं। क्या होगा अत्याचार, भ्रष्टाचार से लड़कर? ...मरोगे या कोने में सरका दिए जाओगे...इसलिए कुशल इसी में है कि भ्रष्टाचार से लड़ो नहीं...उसका हिस्सा बनो।

द्वार पर धीरे-धीरे भीड़ इकट्ठी होने लगी। अभी तक सारा गाँव रामदीन के घर पर इकट्ठा था। चार लाशों का एक साथ होना हादसा था...लोग सचमुच दुःखी भी थे। इस दुःख में सुबह से शाम हो गई। थर्टी सेवन ने मनोरंजक दृश्य उपस्थित कर दिया था सो जैसे-जैसे खबर फैलती गई लोग इस द्वार पर पहुँचने लगे। भीड़ सामने देख गजेन्द्र उत्साह से भरकर चबूतरे की मुंडेर पर खड़ा हो गया—

“भाइयों और बहनो! हमारे देश में लोकतंत्र है...लोकतंत्र में संसद है। संसद में संख्या का ही महत्व है। वह सर्वोच्च है। उसकी सर्वोच्चता पैसा लेकर सवाल पूछने, मानव तस्करी करने और न्यायपालिका को बाधा मानने पर टिकी है। हम आपको उसकी सर्वोच्चता बनाए रखनी पड़ेगी। यह हमारा राष्ट्रीय... मानवीय...या जो भी हो...दायित्व है।”

गजेन्द्र अब तमाशा बन गया—ऐ राघव दादा! ओ कटोरी काकी! ...बैजंती भौजी...लिसिन...लिसिन। आई एम नाट गजेन्द्र... आई एम नाट एम जी एच थर्टी सेवन। आई एम... आई एम...आई...। अरे भाई कोई जानता हो तो बताओ ना कि भडुआ को क्या कहते हैं अंग्रेजी में? ...हाँ सही-सही बताइए...ऐं...? बोलो...? भडुआ की अंग्रेजी नहीं जानते क्या? तो आई एम भडुआ। यू...? नाट यू...जै हिन्द...।

कुकाल में हंटर

वह इस साल के इस महीने का पहला सप्ताह और दिन रहा, जब रामकृपाल मास्टर की जवान बेटी जनपद प्रधान छक्कीलाल यादव के बाल-बच्चेदार पुत्र के साथ भाग गई थी। भागी हुई बेटी का बाप तो खैर कुछ भी कहने योग्य नहीं रहता, पर पुत्र के पिता का मानना है कि जिसके पास पलँग बाँटने वाली सुंदर पत्नी हो, वह ऐसी हरकत कर बदनामी क्यों मोल लेगा? ... ग़लती मास्टर की ही है कि पंख निकल आने के बावजूद लड़की के हाथ पीले नहीं किए। पढ़ी-लिखी चालू लड़की उनके सीधे-सादे लड़के को भगा ले गई।

जनपद प्रधान यादव परिवार के बारे में सच या झूठ बोलने की सामर्थ्य कम-से-कम रामकृपाल जैसों में तो नहीं ही है। अतः वे उस दिग्विजयी व्यवस्था को दोष देते हुए सिर पीटने लगते हैं, जो चुनिंदाओं और नौकरशाहों के लिए तो सीमांत तक संवेदनशील होती है, पर शिक्षकों को कटोरा पकड़ा देती है कि ‘जाओ! छूट देते हैं...माँगो और खाओ।’ आँसू टपकाते हुए वे इतना अवश्य बताते हैं कि लड़की उसे अंकल कहती थी। क्रिस्मत के मारे मास्टर को इस कठिन समय में इतना भी नहीं समझाया जा सकता कि अंकल सिर्फ सम्बोधन है, कोई रिश्ता नहीं। यह सम्बोधन कुछ भी होने, करने की छूट देता है।

अकालत्रस्त गाँव पर यह निहायत स्थानीय संकट था, पर दो दिन बीतते-बीतते आसमानी बिजली की तरह तीन खबरें टी.वी. के ज़रिये राष्ट्रीय शोक की भाँति आई। पहली यह कि इंडिया की टीम ने बुरी तरह घुटने टेक दिए हैं। दूसरी में कहीं किसी परदेसिन ने भारतीय नारी का अभिनय करने गई शिल्पा शेट्टी नाम की नायिका को रूलाकर मनुष्यता के प्रति ऐसा अपराध कर दिया कि सरकारें हिल उठीं। और तीसरी खबर में शेयर नाम का स्वर्ण-पाखी किसी निचली बुर्ज पर उतर गया था।

वैसे इन राष्ट्रीय दुर्घटनाओं से यहाँ के रहवासियों का दूर-दूर तक कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ तो जैसे अकाल ही स्थायी भाव बनकर पसर गया है। अकाल

और अपमान से बचने का रास्ता भी खेतिहरों ने निकाल लिया है। सारे दुखों का कारण यह देह है। देह का अंत ही दुख से मुक्ति है। यहाँ हर पखवारे कोई-न-कोई मुक्त हो लेता है।

छोटू जमादार गहराती रात में झिलंगी खटिया सुलगते अलाव के निकट खिसकाकर पुरानी बाँसुरी घंटों-घंटों रुलाता रहता है। बाँसुरी के संग मुहल्लों के कुत्ते भी ऊपर को मुँह उठा लेते हैं। तब लगता है, जैसे किसी रक्त-पिपासु प्रेत के चर गली-गली किसी की टोह में घूम रहे हों।

आज छोटू जमादार की बाँसुरी तो रो रही थी, पर कुत्तों के टोल निर्बाध न थे, क्योंकि...? नहीं, मरा कोई नहीं; अब मौत पर दैनिक ढर्रे में व्यक्तिगत कम ही होता है। लोग-बाग अलावों के आसपास तभी झिमटते हैं, जब या तो रामकृपाल मास्टर की लड़की के भागने जैसी हाय-हाय भरी दिलचस्प घटना हो जाती है, या...या...या...कुछ अलग, दिलचस्प, उत्तेजक कुछ हो जाए।

आज दोपहर बाद जब प्रधान की स्कॉर्पियो शहर से लौट गाँव में घुसी थी, तो अनुमान यही था कि अपने सुपुत्र की खोज में निकले यादव जी मास्टर की लड़की को वापस ले आए होंगे और थोड़ी डाँट-डपट और समझाइश के साथ परिवार को सौंप देंगे। किंतु गाड़ी मास्टर वाली गली की ओर मुड़ने के बजाय सीधी उनकी अपनी कचहरी की सीढ़ियों जा लगी। उसमें से उन के पीछे हाईस्कूल के प्राचार्य उतरे। आरामकुर्सी पर बैठ उन्होंने पानी बाद में माँगा, पहले गंगादास को बुलावा भेज दिया।

गंगादास उस समय ताश के गुलाम-बेगम-बादशाह की काट-छाँट में दिन बिता रहा था। गोकि यादव जी के आने की खबर के साथ यहाँ जमी मंडली में भी प्रेम-प्रसंग का परिणाम जानने की उत्सुकता थी, किंतु जब प्रधान के आदमी द्वारा गंगादास को साथ चलने कहा गया, तो वह सहम गया। यादव जी का क्या? जाने किस केस में किसको फँसा दें?

उसने बुलानेवाले से पूछा, “काहे बुलाया है, हमसे कौन काम पड़ गया?”

“सो कछू हमें नहीं मालूम। बस उन्ने कही बुलाय ले आव, तो हम आय गए...संगई चलो!” लाठी पर ठोड़ी टिकाए पहलवान ने कहा।

ताश के गुलाम-बेगम-बादशाह के बीच छक्कीलाल यादव की हैसियत इक्के की है। जनपद के कमोबेश आधा सैकड़ा मतदान केंद्र तो हैं ही, जहाँ मतदान का रुख उनके गुणा-भाग के अनुसार होता है। उनके कंधे पर शस्त्र है और हाथ में संविधान। गंगादास की कुशल उनका रुख मानकर रहने में ही है। वह हाथ के पत्ते जहाँ के तहाँ छोड़ पहलवान के साथ हो लिया कि अकाल की मार के साथ और भी जो बदा होगा...भोगना ही है। ताश का खेल भी इस आशंका और

उत्सुकता के साथ बंद हो गया कि देखें, प्रेम-प्रकरण में अब क्या मोड़ आता है...?

कुशंकाओं से लदे-फँदे गंगादास ने जब कचहरी की सीढ़ियाँ चढ़ीं, तब प्रधान जी आरामकुर्सी पर आँखें मूँदे अधलेटे थे। आहट सुन उन्होंने पलकें खोलीं, “आ गए तुम?”

“हाँ, मालिक!” गंगादास ने पैर छुए। गाँव-गेंउड़े में यादव जी को उनके असली नाम छक्कीलाल से कोई नहीं सम्बोधित करता। हर कोई अपने स्तर के अनुसार उन्हें दरबार, प्रधान जी, यादव जी, ठाकुर साब, मालिक आदि कहता है।

“वो स्टूल खींच लो, बैठने को।”

प्राचार्य जी की कुर्सी के बगल में स्टूल के ऊपर चौतहा अखबार रखा था। प्राचार्य जी के होंठों पर मुस्कान थी। समर्थ की मुस्कान भी उस शाही फल की तरह होती है, जिसमें हीरे-मोती भरे हो सकते हैं और ज़हर भी। उसे खाने की विवशता तो है ही। गंगादास ने स्टूल खींच लिया, पर बैठा नहीं, खड़ा रहा।

“तुम तो पढ़े-लिखे हो...।”

“पढ़ा-लिखा क्या, मालिक! ...बस, जैसे-तैसे हायर सेकेंडरी कर ली है।” गिड़गिड़ाती दीनता से उत्तर दिया गंगादास ने।

“अखबार में देखो! लाली तेरी ही बेटी है ना? बारहवीं में पढ़ती है क्या? ...अरे भाई, मेरा मुँह क्या देखता है, अखबार देख। शहर में धमाल मचा है तेरी बेटी के नाम का। स्कूल और गाँव का नाम भी खबरों में है उसके साथ। नंबर वन चुनी गई है। और हाँ हमें अभी तक पता ही नहीं था कि हमारे गाँव में इतनी सुंदर लड़कियाँ हैं। मास्टर जी, समझाओ इस पढ़े-लिखे बेवकूफ को!” कह प्रधान जी हो-हो कर हँस पड़े।

गंगादास सिरा-तागा मिला रहा था, तो प्राचार्य जी ने बात साफ़ की, “दो महीने पहले जो प्रांत-भर के स्कूलों की खेल-कूद प्रतियोगिता हुई थी ना! तुम्हारी बेटी लाली ने लंबी और ऊँची छलाँग तो लगाई ही, साथ ही उसकी चाल-ढाल और लुक भी ‘हर्त्स’ को भा गई। टैलेंट हंट के सिलसिले में वे लोग भी थे वहाँ। उन्होंने चुन लिया है लाली को।”

“मैं समझ नहीं पाया...।” गंगादास बुदबुदाया।

“अरे...भाग्य खुल गए तेरे। कल कम्पनी वाले तुझसे डील करने आ रहे हैं। लाख-पचास हजार तो मिले ही समझो। मैंने स्कूल पै उनके स्वागत का सोचा है। तुम ज़रा लड़की को ढंग-ढौर से सजाना। कभी-कभी होंठों तक आया जाम भी टूट जाता है।” अचानक जीभ पर आई उक्ति पर मुग्ध हो, अबकी बार कुछ और जोर से हँस पड़े प्रधान। इस बार उनका साथ प्राचार्य जी ने भी दिया।

ऐसा नहीं कि गंगादास जाम, होंठ और उक्ति का अर्थ न समझता हो, किंतु

यह भी जानता है कि प्रभुता के आगे नासमझ दिखने में ही कुशल है, “मालिक की बात रखने की पूरी कोशिश करूँगा। वैसे इस अकाल में हम जैसों के यहाँ सजने-सजाने को धरा भी क्या है?”

“गंगा! पढ़ा-लिखा होकर बेवकूफी की बातें मत कर। अकाल अकेला तेरे ऊपर ही नहीं है। हमारी दो सौ बीघा धरती सूखी पड़ी है। दो साल की लागत के दस लाख मिट्टी में मिल गए। इस साल की लागत नहीं लौटनी। खर्चें ज्यों-के-त्यों ही नहीं हैं, बल्कि बढ़ रहे हैं। गाँव में रहके अधपेट या पानी पीके भी दिन गुजार लो, यहाँ तो शहर में शहरवालों की तरह रहना पड़ता है... खर्च करना पड़ता है... शहंशाही दिखानी पड़ती है। तुम लोग करते रहते हो—अकाल... हाय-हाय... भूख, बीमारी, काम, पैसा। कभी भोपाल-दिल्ली जाकर देखो! अकाल-वकाल दिख जाए तो गोली मार देना मुझे। खैर, तुम जाओ और हंटर कल आ रहे हैं। उनके एजेंट से बात हुई है मेरी। अब जा तू। और मास्टर साहब, आप भी कल की तैयारी करो।” यादव जी जाने क्यों हाँफने लगे थे।

अवसर देख गंगादास पैर छूकर कचहरी की सीढ़ियाँ उतर आया। क्रायदे से भाग्य के अंधे द्वार में उजाला भरने की खबर सबसे पहले उसे अपनी पत्नी धनवती को देनी थी... जिसे लाड़ में उफान आने पर वह धनो भी कह लेता है। गम्बर वाली फ़िल्म में हेमामालिनी कहती है, ‘चल धनो! ... इज्जत का सवाल है।’ चुनाव के टैम भी उसने जगह-जगह यही डायलॉग बोला था। ... पर अपनी धनो को वह खबर सुनाएगा अमिताभ बच्चन की तरह, “तो धनो जी! ये सवाल है पचास हजार का... सोच लीजिए.. आपकी सारी लाइफ लाइनें खत्म हो चुकी हैं। सोच समझकर उत्तर दीजिएगा—लाली या हंटर्स?... तो लॉक करें?”

गंगादास ने अनायास ही तिवारी के घर की गैल पकड़ ली। तिवारी ने कलेक्टरी में नौकरी की है, उन कलेक्टरों के हाथ नीचे, जो अंग्रेजी ही खाते, पहनते, ओढ़ते, सोते थे। इतना तो वह भी जानता है कि हंटर माने शिकारी होता है, पर शिकारियों का गाँव की लड़की लाली से सूत्र जुड़ नहीं पा रहा है उससे। रास्ते में टोकाटाकी और पूछताछ भी की लोगों ने, “काये गंगादास! आय गई मास्टर की मोंड़ी?”

“मैंने तो नहीं देखी।” वह लोगों के चर्चा-स्वाद में नहीं उलझना चाहता था।

“यादव तो आय गए हैं ना!”

“हाँ!”

“तो...?”

“तो उनसे ई जायके पूछ लो।” वह बढ़ता गया।

तिवारी जी खरहरी खटिया पर तकिये का सहारा लिए ढलती धूप का सुख उठा रहे थे। उन्होंने गंगादास की पालागन पर आँखें खोलीं, “हूँ... बैठ।”

गंगादास अनगढ़ पत्थर की चौकी पर बैठ गया, “महाराज! एक कष्ट देने आया हूँ... कैसे कि अंग्रेजी का जानकार आप-सा और नहीं है जिले-भर में...।”

तिवारी हँसे, “बाँस पे मत चढ़ा... मतलब की बात बोल!”

“महाराज, हंटर्स के माने क्या हैं?”

“बारहवीं क्लास तक पढ़ा है तू। हमने मिडिल पास करी थी... दरजा आठ। तो कूँ नहीं मालूम हंटर्स के माने?”

गंगादास चौकी से उठ पैताने बैठ तिवारी के पैर चाँपने लगा, “चींटी को पसेरी की मार न मारो, महाराज! हमें तनिक ब्यौरवार बताय दो।”

“पर तो कूँ जरूरत का आन पड़ी हंटर की? देख भाई, नोटशीट में जिस शब्द का अर्थ पक्ष में कुछ होता है, तो वही शब्द विपक्ष या विरोध के लिए दूसरा अर्थ देने लगता है। शब्द की शक्ति उसका अर्थ निकालने वाले के अनुसार प्रकट होती है। जैसे एक शब्द आजकल किसी के भी सिर पर लाद दिया जाता है—सोशल जस्टिस... सामाजिक न्याय... अब इसका मतलब किसी के लिए अवसर पाना है, जैसे तू। यादव के लिए इसका अर्थ कुर्सी पाना है और मुझे लगता है जैसे वह बेघर करने का षड्यंत्र हो। तू हंट, हंटर्स को किस मतलब से समझना चाहता है?”

गंगादास मान गया कि बुढ़ऊ बहुत घाघ है। पूरी बात जानकर ही कुछ बताएगा। अतः पाँच पलोटते-पलोटते उसने संक्षेप में पूरा वृत्तान्त कह सुनाया।

अब तिवारी बैठने को हो गए, “तो भाई! पहले तो कांग्रेस्युलेशन यानी बधाई! वैसे तो तुझे खिलानी चाहिए मिठाई... पर छोड़! ... हाथ में कुछ आ जाए, तो डाली भर ले आना। देख, हंट का सीधा अर्थ है शिकार और चतुर अर्थ है खोज। हंट आउट—ढूँढ़ निकालना हुआ और हंट डाउन—दबोच लेना। सुनो! अंग्रेजी दिमाग इतना शातिर है कि जहाँ ज्यादा और आसानी से शिकार मिले, उसे हैप्पी ग्राउंड नाम देते हैं। अब भइया, तू हिसाब बैठा ले कि हंटर्स के माने क्या हैं।” कह सफ़ेद मूँछों में मुस्कराते तिवारी पुनः पौढ़ गए। ... किंतु जैसे कुछ स्मरण आया हो, वे बैठने होकर बोले, “कुछ हंटर्स बाहर से आते हैं और कुछ हैप्पी ग्राउंड में भी बसते हैं।” कैंटीली मुस्कान मारते हुए वे फिर खटिया पर फैल गए।

गंगादास प्रश्न पूछती निगाहों से स्वयं को बचाता अपने घर में आ घुसा। ‘शायद दिन फिरें’ की आशा के साथ गाँव में हंटर्स के आने और लाली का भाग्य चमकने की बात कही, तो मन ही मन खुश होती धनवती आशंकित भी हो गई, “इन बुरे दिनों में यह कोई नई आफत तो नहीं है? आफत अकेले नहीं आती।

और कई बार तो वह भलाई की उँगली पकड़के आती है।”

दोनों ने इसकी लाली से कोई चर्चा नहीं की। बस, धनवती ने चूल्हे की आग कुरेदकर लाली का चेहरा ध्यान में लेते हुए सात बार उसारा कर मुट्ठी भर मिर्चियाँ चूल्हे में झोंक दीं। फिर हाथ जोड़ जैसे हवा में ठहरी किसी शक्ति से माँगा हो, “मइया, कोई नज़र-दीठ न लगे मेरी चिरैया को।”

गंगादास घर में ही घुसकर रह गया और तभी बाहर निकला, जब रात पूरी झमककर अँधेरा गाढ़ा हो गया। मुहल्लों के अलाव यौवन पर आ गए थे। इस अलाव पर आज वाली लूट का जिक्र हो रहा था। कोई गिरोह है, जो इस गाँव की सरहद-भीतर वाली सड़क पर लूटपाट करता है। लूट बाइक वालों, स्कूटर वालों के साथ ही होती है। उनमें भी ऐसे दोपहिया, जिन पर चालक के संग महिला हो।

मामला साफ़ है कि महिला साथ होगी, तो नगदी भले सौ-दो सौ हों, सोना ज़रूर पहने होगी। कान के बाले, हाथ में अँगूठी और गले की चेन भी हाथ लगी, तो कमोबेश बीस हजार का माल होता है। लूट का तरीक़ा भी आधुनिक है—किसी जगह से दोपहिया पर सवार युगल गुजरा, तो मोबाइल फ़ोन से कार्यकारी दल को सूचना दे दी जाती है कि मेहमान अमुक रंग की मोटरसाइकिल या स्कूटर से आ रहे हैं, और कार्यकारी दल सड़क पर उन्हें दिन-दहाड़े भी इस शैली में छेँक लेता है कि दूर से देखने वाला या तेज़ी से किसी वाहन पर गुजरने वाला भी समझे कि बात हो रही है—परिचितों में। वहाँ कट्टे या देशी पिस्तौल की नोक चमक रही होती। महिला को साथ लिए कोई भला मानुस भिड़ भी तो नहीं सकता। मान लो, किसी दुष्ट ने महिला पर इधर-उधर हाथ चला दिया तो...? रुपया-पैसा, धन-वन तो हाथ का मैल है। इज्जत और जान दोनों बचें, तो उसे त्यागने में ही भलाई है। लुटनेवाला अधिक से अधिक थाने में रिपोर्ट दर्ज कराके संतोष पा लेता है। पुलिस भी जानती है कि खर्चे-वर्चे की तंगी में कुछ ऐसा ही होता है। ...फिर यहाँ लूट, वहाँ फ़साद, इधर फौजदारी, उधर शांति भंग। थानों में स्टाफ़ कम है और स्टेशनरी तक फ़रियादियों से ही मँगानी पड़ती है। ...इतने पर भी ऊपर सलामी भेजो और वर्दी का स्टेटस भी रखो। ...तो कुछ-न-कुछ एडजस्टमेंट रखने ही पड़ते हैं। आज का शिकार कोई पहुँच वाला हो गया, तो थानेदार को डाँट पड़ गई। उसने आकर चतुरी धोबी के लौंडे को धर लिया। सुना है, प्रधान जी बीच में पड़े हैं। चतुरी उनका पक्का वोटर है। लड़के-बाले हैं...संग-कुसंग में पड़कर ग़लती हो ही जाती है।

कभी-कभार आने वाली बिजली आई न थी, सो गाँव में देश-विदेश के सुख-दुख भी नहीं पहुँचे थे। मोड़ पर पक्खा की ओट से उसने लाली का नाम

तथा ‘कल कुछ होने वाला है’ जैसी फुसफुसाहट भी सुनी।

अपने-आपको प्रकट न करता हुआ वह जाटों के अलाव तक जा पहुँचा। यहाँ पूरनसिंह ने अपनी नई दीवार सार्वजनिक रास्ते में धँसाकर आने-जाने की जगह बिलकुल सँकरी कर दी है। इस पर भी पत्थर की पटिया डाल खंडों पर टिका बेंच-सी बना ली। पहले जिस रास्ते से बैलगाड़ी मजे से निकालती थी, अब वहाँ से मोटरसाइकिल भी हिकमत से निकालनी पड़ती है। यादवों की तरह जाट भी लठैत हैं। यादव जी ज़रा राजकाज में बढ़े-चढ़े हैं, फिर भी जाट दबते नहीं उनसे। कमरों के फैसलों से अधिक निर्णायक मैदानी फैसला होता है।

“को है?” किसी ने उसे दीवार से चोर की तरह चिपके देख लिया।

“मैं गंगादास...”

“अरे तो सिंगी रिशि (श्रृंगी ऋषि) की नाई दुबका-दुबका काये फिरता है?...आ बैठ! दो फूँक बीड़ी की मार लै।” पूरनसिंह ने बुला लिया।

बच निकलने का अब कोई रास्ता न था। गंगादास आँच के ऊपर झुके झुंड में शामिल हो गया।

“तें प्रधान के हियाँ गया था। ...कछू पता चला के कहाँ है मास्टर की मोड़ी?” अंगारे पे फूँक मार बीड़ी सुलगाते पूरन जाट ने पूछा।

“दददा! मोय क्यों बताते प्रधान जी? मोसे तो कल कोई आय रहे हैं ना, लाली को पुरस्कार बाँटने, सो बुलाया था।”

“अच्छा! का मिल रहा है पुरस्कार?”

“जो मिल जाए। देंगे ही...ले तो न जाएँगे कुछ। बस, हम तो पहुँच जाएँगे प्रोग्राम में। बाक़ी प्रधान जी जानें...”

“अरे, छिपाय मत हमसे...तें इतना सीधा नहीं है। कान में कछु मंत्र दे दिया होगा अहीर ने, तासे गूँगे का गुड़ चुभलाय रहा है। ख़ैर, नाई के कटे बाल कल सामने आय जाएँगे। कल ही आय रहे हैं ना वे नेता लोग?”

“हाँ, कल ही बताय रहे...”

पहाड़ की ऊँचाई पर छोटू जमादार बाँसुरी में फूँक मारने लगा था। उसका घर अधपहाड़ी पर है, इसलिए रात में वहाँ की आवाज़ दूर-दूर तक जाती है।

“लेउ! कर दऔ सारे ने मसान जागरण शुरू। अबै हाल देखो, सारे कूकुर-कुतियाँ प्रेत-पिसाच बुलावन लगेंगे।” अलाव पे बात पूरी न हो पाई कि कुत्तों का कोहराम शुरू हो गया। जैसे वे छोटू के सुर-संकेत की ही प्रतीक्षा कर रहे हों। किंतु चूँकि गाँव की सूखी छाती पर इस सप्ताह लगातार कुछ-न-कुछ अंकित होने के क्रम में आज दो-तीन हलचल भरी इबारतें लिखी गई थीं, जिससे चर्चाओं के तेज़-मंदे दौर चल रहे थे, अतः कूकुर-निमंत्रित प्रेत-पिशाचों को कुछ देर के

लिए ही सही, रोके रखना आवश्यक था। कुत्ता-तंत्र की सिंफनी को तोड़ने की परीक्षित विधि एक ही है, 'पत्थर फेंको।' अँधेरे में दिख न रहा हो, तो प्रेतों को आमंत्रित करनेवाली आवाज़ की दिशा में फेंको। अपना सिर बचाने के लिए कुत्ता-समूह इधर-उधर होगा। पत्थर फेंकने की दिशा जितनी सटीक और अवधि जितनी लंबी होगी, प्रेत उतने ही दूर रहेंगे बस्ती से। संभव यह भी है कि अधिक समय तक दूर रहने पर अपनी क्षुधा शांत करने वे किसी दूसरी बस्ती की ओर मुड़ जाएँ।

अलावों से पत्थर उछाले जाने लगे, तो कुत्ते पहले रुक-रुककर भूँके...कूँके...एकाध बार एकत्र हो सामूहिक स्तर पर रोये, किंतु जब उनके हर स्वर का उत्तर पत्थर से मिला, तो पिछली टाँगों के बीच अपनी-अपनी पूँछ दबा देहरी-द्वारों की ओर निकल गए। छोटू की बाँसुरी पर अब एक लोकगीत की धुन आ गई, जिसमें आसमान की खिड़की से झाँकते पुरखे अपनी संतान को पुकारते हैं तथा माँ अपने दूध का स्मरण दिलाते हुए धरती का हरापन बनाए रखने को कहती है। ऐसे में मज्जे और चटखारेदार चर्चा चल ही नहीं पाती। धीरे-धीरे अलाव खाली होने लगे।

घर की ओर लौटते गंगादास की देह में एकबारगी सिहरन भर गई...उसके ठीक पिछवाड़े सियारों का समूह चीख उठा था। हुआँ-हुआँ इतनी तेज़ थी कि बाँसुरी की आवाज़ तक दब गई।

“क्या कोई फिर मर गया गाँव में?...इस सप्ताह के पहले ही दिन तो लटूरी पहलवान ने सल्फ़ास की गोलिएँ गटककर आत्महत्या कर ली थी। पिछले हफ्ते रामदीन जाटव मरा था। बीमारी का इलाज कहाँ से कराता? जैसे-तैसे उधारी में मिले सात सौ रुपए तो डॉक्टर की फ़ीस और परचे पर लिखी जाँचों में ही उड़ गए। दवाएँ कहाँ से खरीदता...बाल-बच्चों का पेट भरने के ही लाले पड़े हैं। जाने आज किसकी बारी हो?”

उड़के किवाड़ खोल घर के भीतर घुसा, तो धनवती सुलगती बरोसी पर आग तापती मिली।

“काये, लेटी नहीं।”

“पेट में भारीपन और दरद-सा है।” धनवती ने बताया।

“पथरी का दरद तो नहीं शुरू है गया?”

“वही लगे है।”

“प्रधान जी कह रये थे कि कम्पनी वाले कल लाख-पचास हजार दै सकते हैं। अबकी औपरेसन कराय ही लेंगे। डॉक्टर ने कही हती ना कि इलाज में देरी से कैसर का खतरा होय जाता है।”

दाँतों में निचला होंठ दबा दर्द का तीखापन टालती हुई धनवती हँसी, “सूत

न तगा कोरी सें लट्ठमलठा। तुम तो बादल देख कंधे का पोतला लुढ़कानें लगत हो।”

“तेरी कसम...अखबार में फोटू निकरा है अपनी लाली का। पूरे प्रांत में अव्वल है। तभी न इनाम दै रही है हंटर कम्पनी।”

“हम ये नहीं समझ पाए रहे कि बिना मतलब, बिना रिश्ते-नातेदारी के कोई इतना रुपया काये देगा?” धनवती बरोसी के ऊपर झुक गई, जैसे दर्द को सेंकने, सारी आग अंक में भर लेना चाहती हो।

“कछू होय औपरेसन तो करवाना है, जल्दी!” पत्नी की तरह ऑपरेशन शब्द का कोई अव्यक्त भय गंगादास के मन में भी है। वह घाव से नहीं डरता, पर ऑपरेशन की सोच सहम जाता है। अंग्रेजी शब्दों का कुछ ऐसा रौब है कि डॉक्टर अंग्रेजी का परचा बना ज़्यादा फ़ीस झटक लेते हैं। अंग्रेजी नाम से दवा की क्रीमत कई गुनी हो जाती है। नेता और मंत्री अफ़सरों से झेंपते हैं...क्योंकि अंग्रेजी किसी भी अच्छे-बुरे को फ़ाइल के फ़ीते से बाँधकर रख देती है।

धनवती उदरशूल में गिरहें-सी लेने लगी।

“अब तू लेट ले। मैं हल्दी मिला गरम बेसन तैयार करवाता हूँ। लाली मल देगी। गुनगुने पानी से हींग के दो रबा गटक ले...बाय बिसरने से कछू राहत तो मिलेगी ही।” वह पत्नी को उठाकर पौर में ले आया। भीतर की झिलंगी बदलने की ज़रूरत भी अब ज़्यादा जोर से महसूस हुई।

लाली पिता के पड़ोस की खाट पर छोटी बहन को सहेजे लेटी थी। भाई पिता के तख़्त पर सोया था। माँ जब पीड़ा की गहरी साँस लेती, तो लाली के भीतर भी कोई चिलक दौड़ने लगती। किंतु वह कर भी क्या सकती थी? माँ ने स्वयं ही उसे भाई-बहन को सँभालने के लिए कह दिया था। बेहाल-सी माँ को आते देख वह खटिया छोड़ खड़ी हो गई।

“चूल्हे पै तनिक बेसन सेंक ले, बिटिया! हल्दी मिलाके चुटकी-भर। एक गिलास पानी हू गरम कर ले।”

लाली तुरंत ओसारे की ओर दौड़ गई, जैसे सब-कुछ समझ गई हो कि उसे क्या करना है।

थिगारों सजी रजाई ओढ़ाकर, छोटी बेटी को तख़्त पर लिटा, गंगादास खटिया पर बैठ गया। सिरहाने मिट्टी के तेल की ढिबरी उतना ही प्रकाश फेंक रही थी, जितने में परिचित चेहरों का अनुमान लगाया जा सके। ऐसे उजाले में पहचान भी चेहरे-मोहरे के बजाय चाल-ढाल तथा आवाज़ से अधिक संभव बनती है। गंगादास रजाई भीतर हाथ कर पत्नी के पेट पर फेरने लगा। आत्मीय स्पर्श भी दर्द को कुछ-न-कुछ सोखता ही है।

गंगादास आज रात पत्नी के साथ मिलकर भविष्य पर विचार करना और सपने बुनना चाहता था, पर आदमी का सोचा हमेशा कहाँ होता है? काल की गति कठिन होती है। आदमी का गीत कब चीख में बदल जाए, इसका अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। चमकदार कल गंगादास की पहुँच से अँगुल भर ही दूर है कि पत्नी के उदरशूल ने उसके प्रतीक्षा सुख से भी वंचित कर दिया।

लाली आश्चर्यजनक द्रुति से हल्दी-बेसन की मलनी और गुनगुना पानी लेकर आ गई। हींग की डली पानी के संग फाँककर धनवती बोली, “बेसन लाली मल देयगी...तुम नेंक देह सीधी कर लो!”

गंगादास ने हाँ या ना कुछ न कह बस लाली के बैठने लायक जगह बना दी। बेटी जैसे हर संकेत का आशय समझती हो...वह जल्दी से गरम हल्दी-बेसन पेट पर मलने लगी। निहायत स्थानीय क्रिस्म का यह उपचार इतनी राहत अवश्य देता है कि तीखा शूल भी कुछ देर में सहने योग्य बन जाता है। सहने की विरासत गरीब और किसान को जन्म-जन्मांतर से प्राप्त है। ऊपर से वह स्त्री भी हो, तो पीड़ा का पहाड़ भी छाती पर धरे वह मुस्कुरा ही देगी।

“परेशान न हो। घंटे-दो घंटे में कम हो जाएगी हूल। ...चार-छह बार हौ चुकी है। तुम तो ऐसे मुँह लटकाए हौ के...।”

“तीन साल के लगभग है गए...अब बहुत जरूरी है औपरेसन...नहीं तो पथरी पित्त की थैली में घाव कर नासूर बनाय देगी।”

“जब इतने दिन में नासूर ना भया, तो थोरे दिन और सही। बरस-दर-बरस से सूखती धरती पर कब तक दया न करेंगे मेघ...। ईसुर इतना निठुर नहीं है के...?”

“अरे, ये तेरी चिंता की बात नहीं है...मैं हूँ ना!...हाँ एक बात जरूर करनी हती...चलो, सबरे देखेंगे।” बेटी पर दृष्टि फेंकता गंगादास बोला।

धनवती भाँप गई कि उसका पति कुछ कहना-सुनना चाहता है...एकांत में। सो पीर पीकर बेटी से कहा, “तैं जा लाली! अब कछु आराम है। मेरी खटिया पैं जायके सो रह। कल इनाम बाँटबे बारे आय रहे हैं, सो जल्दी पहुँचना होयगा जलसे में। हूल तो थोरी देर में मिट जाएगी।”

बेटी माँ के पेट पर बेसन की अगली चुटकी मलने लगी। शायद कष्ट के इन क्षणों में वह माँ के पास ही रहना चाहती थी, पर माँ-बाप द्वारा दुबारा कहे जाने पर वह खड़ी हो गई।

“तुम्हारी खाट तो बूढ़ी वाली खपरैल में है।”

बेटी की बात पर वर्तमान की विपदा और आशंका भरे भविष्य की उधेड़बुन से ग्रस्त गंगादास भी हँस पड़ा, “तेरी बूढ़ी दादी तो मरकर सरग पहुँच गई। अब

थोड़े ही आएगी तोकूँ डराने-धमकाने। पगली...तू ही तो बड़ी है घर में...डरी तो आगे कैसे चलेगा? ...हम लोग माटी के संग मिलके कमाने-खाने वाले हैं। ...हमें ज्यादा मजबूत, ज्यादा चतुर, ज्यादा हिम्मत वाला होना होता है। तुम लोगों को तो हमसे भी ज्यादा लड़ना है...जीने के लयें।”

लड़की की समझ में पिता की बातों का अर्थ तो न आया, पर लहजे और ध्वनि से लगा कि कोई गहरी बात कही गई है उससे। अधसोये भाई को कंधे से चिपका वह खपरैल की ओर चली गई।

खपरैल और चूल्हेवाले ओसारे के बीच आँगन है। द्वार की दिशा पक्की पौर से घेरी गई है, ताकि भीतर की कच्ची छान-छतें ढँकी रहें। ओसारा पुआल, गाँडर अथवा सरपत से दूसरे साल छा लिया जाता है और तीसरी-चौथी साल खपरैल के खपरे नये-पुराने कर लिए जाते हैं। धनवती थोड़ी सफाई पसंद भी है, इसलिए अट्टे में दो नहीं तो कम-से-कम एक बार जरूर घर-भर को लाल मिट्टी और गोबर से लीप देती है। आँगन में अनार का पेड़ भी लगा रखा है। पानी की क्रिल्लत के इन दिनों में वह पेड़ के घरआ में ही पत्थर पर बैठ दो-चार लोटा पानी देह पर उलीच लेती है, ताकि पेड़ को पानी मिलता रहे। ...अकाल की इस कुघरी में भी पेड़ भरपूर फला है।

बेटी के जाते ही गंगादास पत्नी का पेट मलने लगा।

“तुम रहन दो। मोंड़ी टरकाय दर्ई...बोलो! का बात है?” धनवती पति को देखने लगी। व्यथा के बीच भी वह उत्सुकता न रोक पाई।

“ये पेट के हूल की पथरी जम कैसे गई?”

“हमें का मालूम...जे तो डाक्टर लोग जानें।”

“डाक्टर तो अब अपना घर भरना ही जानत हैं।”

“जे सब होत रहेगा...वो मास्टर की मोंड़ी आय गई?”

“अबै तक तो आई नहीं। प्रधान जी आय गए। वो ही तो खबर ल्याये हैं लाली के फस्ट रहबे की। अखबार में फोटू छपा है अपनी लाली का। मैंने खुद देखा है। ...धनवती, का अपनी मोंड़ी सच्चें हू बहुत खपसूरत है...?”

“और का ऐसेई...मैंने मुट्ठी भरकें मिरचें झोंकी हैं आग में; जाने कौन की निगाह कैसी हो...। वैसे अब जे गाँव रहबे लायक नहीं रहा। मन की मरजादा और आँख का लिहाज गायब होय गया गाँव से। फिर...राजा ही चोरी करै तो न्याय को करै? मोय तो लाली की फिकर होन लगी है। गैल-घाट इस्कूल-विस्कूल अकेले आवन-जावन है। ऊँच-नीच होय गई, तो प्रान तजने पड़ेंगे।” धनवती के माथे पर पीड़ा की जगह चिंता उग आई।

मंदिर की मुँडेर पर उल्लू बोलने लगा था। छोटू जमादार की बाँसुरी सिसक-

सिसककर सो गई थी। एक नींद ही है, तो हजार चिंता और पीड़ा में मरहम बनती है। धनवती अचानक ऐंठन से भर गई। गंगादास उसके ऊपर झुक आया, जैसे पत्नी की आकुलता को अपने अंक में समेट लेगा। अनायास ही उसकी आँखों से आँसू चू पड़े, “तू ही रोकती रही, धनवती! मैं तो तब ही कह रहा था कि बेच देंगे बीघा-दो बीघा ज़मीन... भर देंगे डॉक्टर की रकम... ज़मीन ज़िंदगी से बड़ी नहीं है।”

“बड़ी-छोटी कौ तो नहीं मालूम... पर इज्जत जरूर है किसान की।” ठहर-ठहरकर साँस खींचती धनवती बोली, “ज़मीन जाते ही हम किसान से मजूर हो जाएँगे।”

“हमसे तो मजूर भले... कम-से-कम मेहनत की क़ीमत तो मिल जाती है। खेती मेहनत भी खाती है और लागत भी। करजा लेके खेतों का पेट भरते तीन साल हो गए। ... वो सोना कौन काम का, जो कान ही फाड़ दे। तभी न बेच रहा है हर कोई खेत-खलिहान दनादन। कम-से-कम अभी कुछ हाथ भी आ जाता है। दो साल बाद तो ब्याज में ही बिक लेगा सब कुछ।”

“तुम कह रये हते के लाली को मिलेंगे कल लाख-पचास हजार?”

“हाँ... सो अगर मिल गए, तो करज हल्का है जाएगा और इलाज हू है जाएगा तेरा। देखें का होता है?... इतनी बड़ी रकम... भाग्य पै भरोसा तो मोकूँ भी नहीं हो रहा है...। कौन हैं ये हंटर वाले, जो किसी मतलब के बिना पैसा लुटा रहे हैं? प्रधान जी बिनके स्वागत की ऐसी तैयारी में काये जुटे हैं? ... वे तो बिना स्वारथ के काहू की चिरी उँगली पै भी नहीं मूतते।”

घुग्घू किस-किसकी मुँडेर पर बोला... खीसटी कहाँ-कहाँ खिखियाई... कुत्ते कितना रोये और सियारों के टोल किस-किस कोर में हुआँ-हुआँ चिल्लाते रहे... प्रेत-पिशाच गलियों में घूम-घूम कब आकाश की सीढ़ियाँ चढ़ गए... इस सबसे बेखबर दोनों जने बस अपने दायरे की दुनिया नापते रहे। वेदना जब जीवन का अंग बन जाती है, तो सहनीय भी हो जाती है। पहाड़ के ऊपर से जब छोटू जमादार के मुर्गे ने सकारे की सूचना दी, तब धनवती और गंगादास दोनों ही विगत आगत की चिंता से दूर नींद की छाँव में थे। गौने वाले संवत के सत्रह बरस बाद यह पहली बार था कि दोनों के सोते, सूरज की किरणें आँगन में उतरी थीं।

दोनों ही हड़बड़ाते हुए जागे। सत्रह साल पहले माँ मुस्कुराकर अनदेखा कर देती थी। अब सत्रह साल बाद बेटी क्या सोचेगी, जो दरजा ग्यारह में पढ़ रही है? शहर आती-जाती है, सिनेमा टी.वी. देख लेती है, किताबें पढ़ती है... यौवन की देहरी पर खड़ी हो चुकी है।

गंगादास अपढ़ या कुपढ़ नहीं है। भले बहुत कुछ नहीं जानता, किंतु वे

बहुत-सी बातें समझता भी है, जो उसके पुरखे नहीं समझते थे। चतुर-चालाकों ने उनके मिट्टी मिले जीवन को गँवार कहा... उन्होंने मान लिया। इंडिया रचकर व्याख्या की—यही तो है हिंदोस्तान... भारत। ... उन्होंने स्वीकृति में सिर हिला दिया और इंडिया की खुशहाली देख-सुन संतोष पाते रहे। वे ‘भारत दैट इज इंडिया’ कहनेवाले प्रभुओं की चतुराई नहीं पकड़ पाए। प्रभु वर्ग के ऐश्वर्य और भाषा के आतंक में चुप रहे। संप्रदाय स्वीकार, जातियाँ स्वीकार, इन सबको बनाए रखने की विधियाँ स्वीकार।

गंगादास पिछड़ा स्वीकृत...। पर सत्ता और साधन की तराजू पर वह ग्राम का बाँट है। प्रधान जी किलो वाले बाँट हैं। पलड़े पर पासंग भी नहीं है गंगादास।

झाड़-बुहार के बाद लाली हैंडपंप से दो खेप पानी भी ले आई। उसे पता लग गया है कि आज वह महत्वपूर्ण है। लड़कियाँ जितनी दिखती हैं, उससे कहीं अधिक जानकार होती हैं। बोलें भले नहीं।

लाली की भी ललक है कि उसके माँ-बाप भी टी.वी. के माँ-बापों जैसे हों—ललुहे, चिकने, सुंदर। टी.वी. के बूढ़े-बूढ़े भी कितने हरे-भरे दिखते हैं। कितने शानदार होते हैं उसमें स्कूल। उसकी कक्षा वाले लड़के-लड़कियों से राष्ट्रपति हाथ मिलाते, बतियाते हैं। दूसरी दुनिया है वह इस धरती की। काश! लाली पहुँच पाए वहाँ ... अपना झाड़-पोंछा लेकर ही सही।

स्कूल से चपरासी आया था, “जरा जल्दी पहुँचना, गंगादास! ... बाल-बच्चे भी पहुँचें... और जरा ढंग-ढौर से पहन-ओढ़कर। प्रधान जी ने कहलवाया है। तुम तो अभी नहाए-धोए भी नहीं। ... हम लोग भोर से जुटे हैं। स्कूल सजा-बजाकर ऐसा चकाचक है कि देखोगे तो...। और हाँ, लाली को जल्दी पहुँचना। बंसल बहनजी कुछ बता-समझाकर तैयार करेंगी उसे।” इतना कह बिल्ली की चाल आया चपरासी कुत्ते की चाल दौड़ गया।

बाहरी आवाज़ सुन धनवती भी किवाड़ से आ लगी थी, “का कह रहा था?”

“वही कि हंटरवाले आय रहे हैं... जल्दी पहुँचो। तुम सबको चलना है।” गंगादास ने बताया।

“हम का करेंगी?... मर्द-मानस के बीच जनी की जरूरत?”

“अरे भाई! तू मइयो है। तेरा ही रूप-रंग तो उतरा है लाली पे। आनेवाले यह भी देख लें कि पुराने चावलों की चमक कैसी है!” उमगती खुशी चुहल में प्रकट की गंगादास ने।

“और चमक देखि चखबे को ललचाय बैठे तो?” धनवती में गौरव की उमंग लहरा गई।

गंगादास मुँह बाए रह गया कि अरे! निरक्षर धनवती में संधान की इतनी तीक्ष्ण प्रतिभा भी है! वह मन ही मन निछावर हो उठा। भीतर कहीं कोई तीव्र आवेग हरहराया उन होंठों को चूमने का, जहाँ से यह चतुराई का सोता फूटा था।...दोनों एक-दूसरे की आँखों में कुछ खोजते रहे, फिर बर्तन उठा वह नहाने के लिए पानी लेने हैंडपंप की ओर निकल गया।

रोज़-रोज़ पानी भर पाना भी एक युद्धाभ्यास जैसा है, क्योंकि शरीर गीला और गला तर करने के लिए गाँव में सूखने से बचे कुछ ही हैंडपंप हैं, जहाँ बारी और मारामारी के लिए उद्यत एक भीड़ हमेशा ही जुटी रहती है। लगता है, दुनिया में पानी के लिए युद्ध का आरंभ इसी गाँव से होगा।

गाँव में सूनापन था और गाँव के बाहर हलचल दिख रही थी। स्कूल बाहर ही है—शहर को जाने वाली सड़क से जोड़ने वाली सड़क की ठीक बाजू में। वहाँ झंडियाँ दूर से दिख रही थीं। माइक टेस्टिंग की आवाज़ें भी घरों से ऊपर तैर उठीं। नाई और चौकीदार दोनों ही मुहल्ले-मुहल्ले में सबको स्कूल पर पहुँचने का बुलौआ देते फिर रहे थे।

सूखे ने किसी के पास कोई काम न छोड़ा था। चारे-पानी के अभाव में अधिकतर ढोर-ढंगर औने-पौने बेच दिए गए थे और न बिक पाने योग्य बूढ़े, मरगिल्ले खूंटों से खोल हाँक दिए गए थे। भूख इस क्रूर पसर गई कि यदि कोई बछड़ा-पड़ेरू गाँव से निकल जाए, तो कुत्तों का झुंड उसे चीर-फाड़ देता। रात में बाहर अटका पशु सियारों या भेड़ियों का शिकार हो जाता। आदमी भी सुरक्षित नहीं रहा वनचरों से। कुछ परिवार घरों में दीवाली के दिये जलाकर दिल्ली, हरियाणा, पंजाब की ओर काम की खोज में निकल गए। कुछ अपनी-अपनी साइकिलों से सुबह-सुबह क्रस्वे का रुख कर लेते हैं। गाँव में बच्चे, बूढ़े महिलाएँ और निठल्ले ही बचते हैं, जो अधपेट पकाने-खाने के साथ दिन-हफ्ते कुतरते हुए अच्छे समय की प्रतीक्षा की पौनी कातते हैं। बीच-बीच में हत्या, आत्महत्या, जनम-मरण, हास-त्रास की घटनाएँ भी हो लेती हैं।

मास्टर की लड़की के भागने या भगानेवाली घटना का चटपटा जायका सनसनी भरा और कुछ अधिक दिन चलनेवाला था कि प्रधान जी हंटरवालों को ले आए। अपने को कुछ मिले न मिले, देखने में क्या जाता है? इक्के-दुक्का और झुंड स्कूल की ओर झिमतने लगे।

गंगादास सपरिवार पहुँचा। बंसल बहन जी जैसे लाली की प्रतीक्षा में ही थीं। वे उसे समेट स्टाफ रूम की ओर ले गईं। प्रधान जी सहित प्राचार्य और स्कूल के शिक्षक-कर्मचारी व्यवस्था में मुस्तैदी से लगे थे। सुना गया था कि जिले के कुछ बड़े अफसर भी आ रहे हैं। अचानक ही बिजली भी आ गई। लाउडस्पीकर

चीखने लगा, “ये देश है वीर जवानों का...।” प्रधान जी ने स्पीकर का मुँह गाँव की ओर घुमवा दिया।

स्वागत में कोई कोर-कसर न रहे, इसकी निगरानी स्वयं प्रधान जी कर रहे थे। उनके विश्वस्त और लठैत अपना-अपना काम पूरे उत्तरदायित्व से सँभाले हुए थे। प्रधान जी के इस कौशल को उनके विरोधी भी मानते हैं। तभी तो हर चुनाव की चाबी उनकी जेब में होती है। वे स्वयं भी कहते हैं कि चुनाव काम से नहीं, ‘मैनेजमेंट’ से जीते जाते हैं।

ऊँचे मंच पर दाएँ वीणावादिनी की मूर्ति, प्रज्ज्वलित होने को उत्सुक चौमुखे दीपाधार तथा करीने से रखे अगरू-धूम के साथ अतिथियों की प्रतीक्षा में तैयार बैठी थीं। पचीसों मालाएँ बाँसदंड पर झालरों की भाँति झूल रही थीं। खादी की महीन धोती पर कलफदार कड़क कुरता तथा महँगी जाकिट में यादव जी आप से आप अतिविशिष्ट हो जाते हैं। अंगरक्षक उनके साथ-साथ डोलता है।

प्राचार्य जी ने माइक से मुँह सटा घोषणा की, “हंटर्स निकल पड़े हैं। आप शांतिपूर्वक अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लें। माताओं-बहनों का स्थान मंच के पास है।”

घूँघट, अधघूँघट और अंशघूँघट वाली माताएँ-बहनें मंच की ओर आने लगीं। गाने पुनः चालू हो गए, “औरत ने जनम दिया मरदों को मरदों ने उसे बाज़ार दिया।” अभी एक अंतरा ही पूरा हुआ होगा कि प्राचार्य जी भवन के भीतर से हड़बड़ाते निकले, “ऐ बंद...बंद करो। यह कौन-सा गीत है?...राष्ट्रीय गीत है यह?”

लाउडस्पीकर वाले लड़के के लिए वीर जवानों, आँखों में भर लो पानी या औरत को बाज़ार दिया जैसे सभी गाने राष्ट्रीय ही थे। इनमें उसकी कोई दिलचस्पी न थी। गाना तो वह “झलक दिखला जा, एक बार आ जा” वगैरह को मानता है। उसने गाने ही बंद कर दिए।

अब आपसी चर्चा आरंभ हो गई। यूँ अवसर लगभग प्रसन्नता का ही था, पर काल की छाया यहाँ भी डोल गई।

“धन्ने! सुना कि तेरा बीज छूँछा पड़ गया। जोत-बखर-बावनी सब खाली गई, बेकार...।”

धनीराम महते मंगल जाट के वाक्यों का दुहरा आशय भाँप गया, “भैया! अपना बीज तो अभी भी इतना पावर रखता है कि बंजर में भी फड़फड़ाकर आँखें खोल दे। वो ससुरा सरकारी सिफारिश वाला सरकारी बीज था। कहते हैं, अमरीका भेज रहा है बाँझ बीज।...मोटा...चमकदार, भीतर से नामर्द।”

“अरे, इसके भरोसे हो गए, तो चार-छह साल में अपना देसी बीज भी खतम हो जाएगा। फिर ताकते रहो उन्हीं का मुँह, झोली फैलाए...।”

“और का। एक बार की याद है?...गेहूँ के संग मिलाके भेज दये गाजर घास के बीज। गेहूँ छह-आठ महीने खाए होंगे, गाजर घास खोदते-खोदते चालीस साल बीत गए।”

गाँव की ओर कुछ हल्ला हुआ, तो लोगों के कान उधर लग गए। हल्ला धीरे-धीरे गाली-गलौज और शायद हाथापाई में बदलने लगा था। बैठे हुए पुरुष तो क्या, माताएँ-बहनें भी ‘क्या हुआ’ जानने के लिए खड़ी होने लगीं।

उखड़ता मजमा थामने प्राचार्य जी भी आए माइक पर, “भाइयो!...बहनो! ...प्यारे बच्चो! शांति बनाइए। जहाँ हैं, वहीं रहें। देखिए, इससे व्यवस्था भंग होती है। बाहर के मेहमान यह सब माहौल देखेंगे, तो आएँगे नहीं यहाँ। देखनेवाले हैं ना कि कहाँ क्या गड़बड़ है?...सब ठीक हो जाएगा।...सबको ठीक कर लिया जाएगा।”

अफ़रा-तफ़री रुकती न देख स्वयं प्रधान जी मंच पर आ गए, “ऐ हरगोविंद! किधर जा रहे हो...? ...बिठाओ सबको। जिलेदार सिंह! देखो, रोको लोगों को।”

जिलेदार प्रधान जी के ख़ास हुकमबरदारों में से एक हैं, लठैतों का मुखिया भी। कठिन अवसरों को अनुकूल बनाने के लिए ही उसे चुना और प्रशिक्षित किया गया है।

हरगोविंद बघेले चूँकि निगाह में आ गया था और निगाह में चढ़ना नहीं चाहता था, अतः ठीक उसी तरह मुड़ आया, जैसे उसकी स्वयं की आवाज़ पर भेड़-बकरियाँ मुड़ जाती हैं। जिलेदार तो विशेष सतर्क हो ही गया, उसके आदमियों की निगाहें भी तीखी हो गईं। इसी बीच कोई सफ़ेद कार मुख्य सड़क से गाँववाली पर मुड़ी और स्कूल परिसर में आ ठहरी। द्वार खोल चार की संख्या आसपास का मुआइना करती-सी निकली। इनके हाथों-कंधों पर बैग और कैमरे थे। आँखों पर धूप-चश्मा तथा दसियों जेबोंवाले पैंट-शर्ट जैसे परिधान में आए इस दल में चाल-ढाल, निहार-उभार से एक महिला-सी सूरत भी थी।

मालूम हुआ, ये चैनल वाले हैं। एक प्रेस फोटोग्राफर भी साथ था। दर्शकों में उत्सुकता और आश्वस्ति की लहर बह गई कि चलो, अब कुछ-न-कुछ तो अवश्य ही होगा।

पाँच मिनट के भीतर ही पुलिस वैन भी स्कूल से आ लगी, जिसमें से उतरे जवान चौतरफ़ी फैल गए। प्रांगण लगभग पूरा भर गया। बातें पुनः आरंभ हो गईं।

“काये भटपुरा वारी! तेरे घरें तो होयगा महीना-दो महीना काटने लायक अनाज?”

“कहाँ जिज्जी...बस कूटा-कोंहरी करके बखत काट रए हैं।”

“आदमी ऊ का करै? अकाल काटा...दुकाल झेला...अब जे तो तीसरी साल में कुकाल है। ...वैसे गंगा और धनवती की तकदीर खुल गई। आदमी पूत कों कमाऊ मानत हैं और इन्ने देखो बिटिया चाँदी के चौतरा पे बिठाय रही है। सुनी है के लाखों के इमाम हैं...ऐसौ कौन सौंवर (स्वयंवर) जीत लियौ या धनियाँ की मोंड़ी ने?” कटोरी काकी ने महिला मंडल में प्रश्न के साथ धनवती के प्रति जलन भी सरका दी।

गोहद वाली गीता तहसीली क्रस्बे से आई मिडिल पास है। क्रीम-पाउडर लिपस्टिक वाली चटक-मटक भी कर लेती है। पति मकान मिस्रि है, सो खाने-पहनने की तंगी भले है, लाले नहीं हैं। इस समय भी अपने आसपास की महिलाओं के नथुनों को वह किसी भावती-सी सुगंध से गनगना रही थी। नाक तक पड़ा घूँघट माथे तक खींच वह बोली, “अबै लाख-हज़ार के बारे में कछू कहा नाय जा सकता है, काकी!...ठाड़ी खेती गाभिन गाय, तब मानो जब मुँह लों आय। गलत तो नहीं बोल रही मैं?” गीता ने मंडली के मध्य अपना हाथ नचाया, जैसे जानकारी का लँगोट घुमा रही हो।

राष्ट्रीय गीत पुनः बज उठे। तैयारी पूरी थी...सबके आँख-कान सड़क की ओर लगे थे। शिशिर का सूरज बहुत तेज़ी से आकाश में टँगता-उतरता है। दोपहर हो गई...खाने-पकाने को भरपूर हो या चुटकीभर, चूल्हा सुलगाने की रस्म तो निभानी ही पड़ती है। तमाशे की प्रत्याशा में महिलाएँ आ तो गईं, पर देर होती पा कसमसाने लगीं। गोदी के बाल-बच्चे भी चें-चें पीं-पीं की भाषा बोलने लगे। प्रधान जी स्थिति समझकर बार-बार घड़ी देखते और प्राचार्य हाथ के मोबाइल पर लगातार कुछ डायल करते दिख रहे थे।

“लो, आ गए...वो आ रहे हैं...” की तेज़-धीमी आवाज़ों के बीच एक के पीछे एक दनादन तीन गाड़ियाँ ऐन स्वागत द्वार के सिरे पर आ ठहरीं। अगली गाड़ी स्वागत द्वार को दाहिने ले तेज़ी से मुड़ती हुई दस क़दम आगे जाकर रुक गई। पिछली दोनों द्वार के सामने खुलीं। उनसे उतरने वालों में दो गोरे साहब थे, दो काले। प्रधान जी लपककर स्वागत द्वार पर पहुँचे। प्राचार्य के साथ भारतीय वेशभूषा में आरती का थाल सजाए दो छात्राएँ थीं। गोरे साहबों की तिलक-माला-आरती हुई। बाद में यही स्वागत काले साहबों को भी मिला।

तालियों की गड़गड़ाहट के बीच अतिथि मंच पर पहुँचे और संक्षिप्त स्वागत-भाषण के बाद लाली को मंच पर बुलाया गया। बंसल बहन जी के निर्देशन में लाली मंच पर आई, तो लोग सचमुच आँखें मल उठे कि क्या यही इस गाँव की लाली है? रोज़-रोज़ वाली वह सिकुड़ी-सिमटी लड़की अचानक खिलकर तरुणी बन गई थी। हंटर्स ने खड़े हो ताली बजाते हुए लाली का स्वागत किया।

लाली की झोली में पचास हजार का चेक और ढेर सारी चीजें भर दी गईं। विदेशी अतिथि ने मुस्कराते हुए कमर में हाथ डाल उसे अपने से सटा लिया। कैमरा इतिहास के दृश्यों को अपनी आँखों में भरने लगा।

जिस, तेजी से हंटर्स आए थे, उसी तेजी से वापसी हुई। प्रांगण में अब उड़ती जूटी प्लेटें तथा मंच पर लुढ़कती बोटलें शेष थीं। प्राचार्य के कक्ष में पाँच प्राणी बैठे थे।

“गंगादास! सोच लो! ख़ूब बतराय लो बहू से भी। मौके बार-बार नहीं आते। बिटिया की जिम्मेदारी हंटर्स कम्पनी ले रही है। तुम लोगों को भी शहर जाना पड़ेगा। ...फ़िलहाल अकेली न रह पाएगी लड़की।” प्रधान जी बोले।

“पर, मालिक!...यहाँ घर है...जमीन है हमारी।” अटकते बोल निकले गंगादास के मुँह से।

“बहू, तू समझा इसे।” यादव जी घूँघट काढ़े और उनकी ओर से थोड़ी तिरछी बैठी धनवती को उन्मुख हो गए, “हम लोगों की तो जैसी गुजरनी थी, गुजर गई। बची-खुची भी कट ही लेगी। बच्चों के बारे में सोचो। क्या यहीं डले-डले गू-गोबर गोड़ते रहेंगे? क्या धरा है तुम्हारे घर में? न बखार में अनाज है, न पनहरी पे पानी। जमीन जितना उगलती है, उससे दुगुना निगल रही है। मैं उसकी भी अच्छी कीमत दिलवा दूँगा। मेरी तो इच्छा है कि ख़ूब मेहनत कर ली, ख़ूब भुगत लिया तुमने, भाग्य से मिल रहा है तो सुख भी भोगो। बाक़ी तुम जानो। आख़िर फैसला तो तुम्हें ही करना है।”

प्राचार्य के पास बैठी लाली तो औचक झोली में आ गिरी सम्पदा से इतनी चमत्कृत थी कि सोच भी क्या पाती और प्राचार्य जैसे गवाह की हैसियत में आ ठहरे थे।

“ख़ैर, आज रात-भर और सलाह कर लो। सुबह मेरी गाड़ी शहर तक पहुँचाने के लिए तुम्हारे यहाँ आ जाएगी!...ठीक?” कहते प्रधान जी खड़े हो गए।

रात में अलाव ठसाठस भरे थे। गाँव-भर में घर-बाहर लाली नाम की ही चर्चा थी। भूखे-अधभूखे सब गौरव में भरे-भरे थे...फिर भी छोटू जमादार अपनी बाँसुरी का रोना लेकर बैठ गया। आज सप्ताह का अंतिम दिन है।

“अरे भाई, तुम लोगों ने सुनी ख़बर? टी.वी. पे आ रही है।” नरेश नाई दौड़ता-हाँफ़ता जाटों के अलाव पर पहुँचा।

“का लाली की ख़बर है?”

“नई...।”

“तो सूखा-वूखा की होयगी।” लोगों की उधर से दिलचस्पी हट गई।

“अरे नई भैया, खास ख़बर है।” नरेश नाई चहक रहा था।

“ख़बर है तेरी...।” बात को रबड़ की भाँति तानते नरेश पर मंगलसिंह कुरा उठे।

“अरे दद्दा...सुनो तो।...नंबर एक, इंडिया की टीम क्रिकेट जीत गई। नंबर दो, शिल्पा शेटी हँस रही है। और नंबर तीन, कोउशेयर है, जो बहुत ऊँचे चढ़ि गया है।” इंडिया की ख़ुशी दूसरे अलाव को बताने के लिए नरेश नाई आगे बढ़ गया।

सपना तेरे लिए नहीं

पैरों में मन-मन भर भारीपन के साथ घुटनों में वह पीर आ बैठी थी कि ज़रा-सा हिल भर जाने से सौ-सौ बिच्छुओं के डंक की तड़प भर जाती।...फिर ज़हर-सा चढ़ता और नसें तड़तड़ाकर फटने को हो आतीं।

वह अपने पूरे जोर से छलाँग लगाता जैसे उसे वैतरणी पार करनी हो, और पाता कि जिस छलाँग को उसने आर से पार पहुँचाने वाली माना था वह दो अँगुल भर ही सरका पाई है। अब तो उसे इस दो अँगुल पर भी संदेह होने लगा था। ...फ़िलहाल उसके पीछे भव्य अंधकार था और किसी गहरी खाई में हहराती नदी का सिर पीटता शोर।

वह जहाँ था, वहाँ से उबरकर किसी बेहतर ठिये पर पहुँचना चाहता था। आगे असंभव लगती दूरी पसरी थी किंतु अपने आप को समेटकर उसने कोई भरोसा पैदा किया तो पीर उतार पर आने लगी। पैरों का बोझ अबूझ संकल्प ने झटककर दूर फेंक दिया। लगा कि वह फाहे-सा हल्का होता जा रहा है। हाथ पैरों को पँख बना उसने स्वयं को आकाश में उछाल लिया। अब वह कल्पना के आनंदलोक में बहने लगा।...मन हुआ तो नीचे ज़मीन पर आ पहुँचा और सामर्थ्य का अहसास फेफड़ों में भरकर फिर उड़ान भर ली। वह पता नहीं किस आकर्षण में खिंचता, किस हवा के इशारे का सहारा पकड़, अधर की मनचीती राह तय करता, जाने किस ओर बह निकलता...।

सपने के ये क्षण उसकी तुष्टि और चैन के होते। वह पीड़ा भूल जाता या यों कहें कि बीती पीर भी कुछ-कुछ मजेदार लगने लगती। वह कोशिश करता कि उसका सपना लंबा हो जाए...सपने के सामर्थ्य की अवधि ख़ूब ख़ूब लंबी, मुलायम और सुगंधित बनी रहे।

सपने की यह राहत ही उसे अधपेट रहकर अगले दिन के युद्ध में डट जाने का सामान सौंपती है।...वह अपनी छोटी-सी दुनिया के अस्तित्व की लड़ाई लड़ता है जागते में। ...वही क्यों? उस जैसे हज़ारों, लाखों...शायद करोड़ों लड़ रहे हैं

अपने-अपने दिन की लड़ाई...अकेले, दुकेले, छोटे बड़े समूह में। यहाँ, वहाँ...जाने कहाँ कहाँ?

सूरज की किरणें उतरने के साथ ही वह शहर के एक ख़ास चौराहे पर खड़ी हज़ारिया भीड़ का हिस्सा हो जाता है। यहाँ खड़े होकर अपने ख़रीदार की प्रतीक्षा की जाती है। हज़ारों में से कुछ सैकड़ लोग एक दिन, दो दिन, दस दिन की बोली पर चढ़ जाते हैं। जो जितने अधिक दिनों के लिए बिक लेता है, वह स्वयं को उतना ही भाग्यशाली समझ अपने ईश्वर का आभार मानता है।

पिछले बरसों के अकाल ने भूख के चक्रवात में घेरकर उसे इस महानगर में ला पटका है। अपने यहाँ उसे यदि एक बरिया भोजन भी उपलब्ध हो जाता तो वह स्वयं को सुखी ही मानता। वहाँ तो खेतों की मिट्टी भी दरकी पड़ी है...आसमान में ताकती, दाँत दिखा धिधियाती। नहीं तो क्या वह यहाँ मजूर बना होता?...किसान छोटा भी हो तो भी भूस्वामी कहलाता है...सरकारी कागज़ों तक में दर्ज होता है। उसे भूखा और अधपेट रहने में उतना कष्ट शायद न होता, जितना यहाँ मजूरी की बोली पर चढ़ने में होता है। पराधीनता है मजूरी और पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।

पर किया क्या जाय?...पहला साल निकाला, दूसरा बरस काटा। पेट काटा...तन काटा...मन तक को चटकने दिया, पर जिस आँगन में दाने की तलाश में इधर-उधर दौड़ मारते चूहे भी थककर निढाल होने लगे हों; वहाँ आदमी कहाँ तक बिसाये?...आ गिरा शहर की देहरी पर। अकाल में ख़ाली पेट, अधपेट रहने की आदत शहर में भी काम आई। सो वह गए तीन चार महीनों से चार छह कच्ची पक्की रोटियाँ सेंक नमक मिर्च के स्वाद के साथ पेट में पटकता है और इतने भर को राजी खुशी मान दूसरे दिन का उजाला देख लेता है।

उसकी पूरी गिरस्ती एक फटे कंबल में लिपटी है यहाँ—स्टील की डोलची जिसमें सवा डेढ़ किलो पानी आ जाए, पत्थर की एकफुटी परपटी जो रोटी बेलने का उरसा बनने से लेकर प्याज़ मिर्च कुचरने के भी काम आती है। बेलन ख़रीद ही लिया है, नमक की थैली आटे के छन्ने वाले छोर में बँध जाती है। बेलदारी करते हुए गिनती की ग्यारह ईंटें एक-एक दो-दो करके उठा लाया है जिन्हें जोड़ अस्थायी चूल्हा तैयार हो जाता है। इतने बड़े शहर में भी अपने उद्योग से वह पेड़ों, झाड़ियों की टहनियाँ, गत्ते फटे जुटाकर रोटियाँ सेंकने लायक ईंधन का जुगाड़ कर ही लेता है। दो महीने से तो वह सुलभ शौचालय वाले दो रुपए रोज़ भी बचा रहा है। क्योंकि यहाँ भोर तक रंगीन बत्तियों की उजाले भरी चुप और आलस भरी रात ठहरी रहती है...तभी वह सड़क के आसपास ही आँखों पर हाथों की ओट करके निपट लेता है। नहाना दोपहर में काम की जगह हो लेता है...या और कुछ ऐसे ही तरीके उस जैसों ने खोज लिए हैं।

उसकी योजना इस शहर में पाँच महीने की है। अतः दो महीने और खींचना चाहता है। उसे उम्मीद भी है कि थोड़ा-बहुत इधर-उधर करते, खुद को समझाते थोड़े बहुतों को साधते सूधते वह समय पूरा कर लेगा।...फिर लौटेगा अपने देस...

देस जिसकी गलियों में धूल उड़ती है, सांय सांय करती भूख घूमती है। एक-एक मटका पानी के लिए कोसों की यात्रा होती है। जहाँ पशु खूँटों से खोल दिए गए हैं। फव्वारों की फुहारें जहाँ स्वप्न हो गए हैं और शहर के लानों की हरियाली देख जहाँ के आदमी को चरने का मन हो आता है। जाने क्यों कभी-कभी उसे लगता है कि सारे स्रोत शहर की ओर मुड़ गए हैं...वह भी तो आ पहुँचा है यहीं।

शहर के लिए बचपन से ही आकर्षण रहा था उसका। इतना होने पर भी गाँव में उसका मौरूसी पता है और यहाँ बे-पता है। हाँ मरी, मौत जैसे आवश्यक संदेश पाने के लिए इस धनीराम ने अपनी कुशल क्षेम के साथ नाम के आगे बज़रिये लगाकर कोई पखवारे भर पहले इस खोखेनुमा दुकान का पता भेज दिया था। यह जरूरी इसलिए था कि उसके गाँव से चलने से पहले ही इस उस मुहल्ले में यमदूतों के फेरे आरंभ हो गए थे...। ब्याह शादी और जनम करन की खुशी ऐसे आफत काल में 'फिर कभी' के लिए टाली जा सकती है किंतु मौत गमी का शोक तो स्थगित नहीं हो सकता। न जाने कौन कब चपेट में आ जाए?...उसका कोई निजी भी...

धनीराम सिर झटक इस सोच को दूर धकेलता है पर वह किसी कसैले धुएँ की तरह मगज पर छा जाता है या कटखने ततैया की नाई भन्नाने लगता है। घर छोड़ने के चार दिन पहले की ही तो बात है कि पड़ौसी का बेटा उदरशूल की चपेट में आकर गिरहें भरने लगा था...। ज्वार की कोंहरी के संग बेर का मिच्चन भसोर गया ससुरा। अनाज में बेर का कूटन मिलाने से मात्रा बढ़ जाती है ना। एक दिन का अनाज दो से तीन दिन तक बढ़ाने का यह तरीका इन दिनों सभी अपनाते हैं...पर अन्न के साथ-साथ पेट का भी खयाल रखना चाहिए ना!...माना कि बहुत भूखा रहा होगा...। नहीं पड़े होंगे, रोटी के टुकड़े या अन्न के दाने पेट में एक दो दिन से...सो सपोरता गया...फूल गया पेट...बन बैठा उदरशूल।

गाँवों में नाड़ी बैद जाने कबके इति हो गए, उनकी जगह कुरुरमुत्ता की भाँति उगे झोलाछाप डॉक्टर जुकाम में भी सुई ठूँसते हैं। सारी बीमारियों को दस पंद्रह किसिम की रंग-बिरंगी गोली केप्सूल में निपटा लेते हैं। उधर शहर वाले डॉक्टर तो निगाह फेंकने से पहले ही डेढ़ दो सौ धरा लेते हैं, फिर दो चार जाँचें भी टाँक देंगे। हज़ार के आसपास ये सब हो जाता है तब दवा दारू का नंबर आता है। दवा का भी क्या भरोसा?...सही बैठी न बैठी।...फिर दिखाओ...फिर

जाँच...फिर नई दवाएँ। इस तरह जीने के जाल में फँसने से तो आदमी मर लेना ठीक समझता है।

बज़रिये वाले इस खोखे की भी अजब दास्तान है कि इसका मौजूदा मालिक कुछ साल पहले धनीराम की ही तरह पेट-पीठ की जुगाड़ में इस महानगर बीच आ अटका। दोनों के बीच अंतर यह कि धनीराम समय का मारा है और वह देस का मारा था। वह रहा बिहारी, ऊपर से पिछड़ा। अगड़ों वगड़ों को ठेलठाल रजिस्टर्ड पिछड़ों की सरकार बनी तो फार्म में आ गया। डेढ़ दो साल में ही उसका फार्म जाति की जमावट का शिकार हो गया। संख्या के प्रतिशत में उसकी जाति पलड़े के पासंग में भी नहीं आती सो सत्ता के वजनदार बाँट ने उसे पलड़े से बेदखल कर दिया। अब उसकी पिछड़ी हेंकड़ी में कुछ दीनता आ मिली और थोड़ी तिकड़म। उस जैसे यूँ ही घर गिरस्ती का छकड़ा खींच रहे थे कि अकाल ने आ घेरा।

अकाल के राज में जात पातें धरी रह गईं। अकाल अपनी पिसाई का काम नीचे से आरंभ करता है...। गरीब से। सरकारों की लिस्ट ऊपर से आरंभ होती है। वह अकाल की लिस्ट को कुछ दिन तो झुठलाता रहा फिर बिहार छोड़ इस घाट आ पहुँचा और फाँकों के साथ तिकड़म से समय को सहलाते यह खोखा जमा लिया। अब धनीराम जैसे मजदूरों का वह सेठ भी है, मार्गदर्शक भी और हैसियत भर संरक्षक भी।

भाग्य के जोर से धनीराम को सब्जीमण्डी में बन रही बहुमंजिली इमारत पर काम मिल गया है। कोई डेढ़ सौ जनी मर्द खप रहे हैं वहाँ। ईश्वर की कृपा रही तो गाँव लौटने तक रोज़-रोज़ की बिका-बिकी से दो-चार नहीं होना पड़ेगा।...टैम से पहुँचो, टैम से लौटो। दफ़्तर सरीखी नौकरी अगर सुपरवाईज़र पटा रहे।...हर हफ्ते हिसाब।

दिहाड़ी से लौटते हुए धनीराम आज दो रुपए वाले गरम मसाले की पुड़िया के संग एक मक्खन की टिकिया भी खरीद लाया है। महीनों से जीभ का स्वाद ही भूला रहा है वह। दिन में मेहनत, शाम को बालबच्चों की चिंता...रात में थकी देह की नींद और नींद में अनजाने, बिना बुलाये मेहमान-से सपने। दोपहर खाने की छुट्टी में उसकी ही उम्र के मिस्त्री ने जब अपने कटोरदान से चोंहटी भर आलू भटे का साग धनीराम की रोटियों पर रखा और कौर के संग जीभ पर घुला तो अचानक ही घर की स्मृति में लिपटा स्वाद लौटा। उसे इस महानगर में बीते दिन किसी पशु की भाँति जिये गए प्रतीत हुए...धूल मिट्टी में सने, हड्डियाँ कूटते, घर की यादें पगुराते दिन।

आज गरममसालेदार छोंक के साग और मक्खन चुपड़ी रोटियों का स्वाद

लिए वह कुछ विलंब से सो पाया। नींद की सीढ़ियाँ चढ़ सपनों की छत पर पहुँचा तो पाया कि वह गाँव के सिवान पर खड़ा है।...झमाझम बरसता पानी अकाल को बहाए लिए जा रहा है। नदी, नाले, पोखर, ताल, खेत-मैदान सब उफने पड़ रहे हैं। वह खुश है...अब नहीं ढूँढ़नी पड़ेगी उसे किसी शहर में पेट की रोटी। धरती हरी होगी तो किसी को भूखा भी न रहने देगी।

धनीदाम के पैरों ने उछाल ली...वह आसमान के बीच जा ठहरा।...अब वह गाँव के ऊपर उड़ रहा है। शहर से नये खरीदे सस्ते सूटकेस के ताले चट्ट-चट्ट खुलते हैं...उसमें भरा सामान धनीराम के आँगन में झरने लगा है—साड़ियाँ, धोतियाँ, पेंट, पेटीकोट, शर्ट, मोजे, जूते...अंगूठियाँ, हार...जाने क्या-क्या। जो खरीदा नहीं गया, जो उसकी पहुँच से भी दूर है, जिसकी जरूरत ही नहीं है, वह भी बरस रहा है। आँगन से बीस हाथ ऊपर ठहरा धनीराम साफ़-साफ़ देख रहा है कि चीजों में मगन उसकी पत्नी और बच्चे अधर में लटके धनीराम को भी नहीं देख पा रहे। शायद वे तय नहीं कर पा रहे कि क्या सहेजें, क्या छोड़ें?

धनीराम के पास अब रुपए भी हैं। अब वह पेंट शर्ट में है...उसकी जेब में पाँच महीनों में कमाये और बचाये दो हजार रुपयों की गड्डी है...गड्डी...ई, वह पत्नी की ओर उछाल देता है।...लगता है कि दूसरी जेब में भी कुछ है...हाँ रुपए हैं इसमें भी। तीसरी, चौथी जेब में भी तुँसे हैं...जिधर हाथ पहुँचता है वहाँ रुपया। इतने रुपए?...घबराकर माथे का पसीना पोंछने पर पाता है कि वहाँ भी रुपए चिपके हैं...रुपयों के पीछे उसका रूप छिप गया है...खो गया है। जिधर आँख घूमे उधर ही रुपया।

माया धनीराम के कच्चे पक्के घर को घेरती जा रही है। जो जगह, ढँक नहीं पाई वे कोढ़ के चकत्तों सी दिखाई देने लगी हैं। चमकती चीजों से पटा पड़ा घर बड़ा अनगढ़ और भोंडा-सा दिख रहा है। सच पूछो तो पत्नी तथा बच्चे भी नहीं फब रहे इस चमक में। हुलिया सुलिया बदलना पड़ेगा इन सबका।...इस तेज़ रफ़्तार दुनिया से चाल मिलानी है तो ये सुस्त, सूखे, चुसे चेहरे नहीं चलेंगे।

धनीराम ने शहर में देखा है कि अधेड़ बूढ़े शरीर दुकान में घुसते हैं और जवान बनकर बाहर निकलते हैं। माँ की उम्र वाली महिलाओं पर लड़के सीटियाँ बजा देते हैं और माता जी युवती की तरह शरमा जाती हैं। उसकी पत्नी तो खैर पच्चीस के भीतर है...उसे तो खूब बढ़िया चमकाया जा सकता है।

वह अब आसमान में टँगा-टँगा उकताने लगा। उतरना चाहता है—आँगन में...ज़मीन पर। पर आँगन की ज़मीन तो चीजों से पटी पड़ी है...पाँव टिकाने भर जगह नहीं दिखती। तो क्या वह यूँ ही टँगा रहेगा...धरती आकाश के अधबीच? ...कोई भय धीरे-धीरे घेर रहा है धनीराम को।

रुपयों के पसार पर खड़े पत्नी, बच्चे...द्वार पर खड़े होकर चमकीले सूटकेस के अक्षयपात्र से झरती चीजों को ललचायी आँखों में भरते गोतिये, पड़ौसी उसे उतर आने का इशारा कर रहे हैं। धनीराम स्वयं भी अपनी देह में वजन भर रहा है, पर वह इतना हलका हो चुका है कि ज़मीन तक आ नहीं पा रहा। ...नहीं छू पा रहा धरती की देह।

कोशिश-कोशिश...और कोशिश। पर नहीं...नीचे उतर पाना संभव नहीं हो पा रहा। जाने किस चक्रवात में आ फँसा है वह? यह उसे जाने कितना ऊँचा उठाकर, उड़ाकर जाने कहाँ ले जा पटकेंगे? बच्चे, पत्नी, पड़ौसी, गाँव वाले ऊपर से छोटे दिखने लगे हैं...। वह लगातार ऊपर जा रहा है...नीचे सब लगातार छोटे दिखते जा रहे हैं। ऊँचाई के अंधेरे में डूबता जा रहा है धनीराम। ठहरना, उतरना, बहना अब उसके बस में नहीं रहा। वह अब लुढ़क ही सकेगा...गुबरीले की तरह।

धनीराम चीखता है। चीख कहीं डूब जाती है अनंत में। कोई उत्तर नहीं चीख का...कोई आवाज़ नहीं आश्वस्ति की...हर ओर एक ठण्डी शांति। आधार पाने व्याकुल हो रहा है वह...फड़फड़ा रहा है। लगता है—वह अचानक टूटकर धरती की ओर आएगा और खण्ड-खण्ड शव के रूप में बदल जाएगा।

क्या पता वह कहाँ गिरेगा?...जाने किस देश, काल के बीच? कौन जाने कि उसके शेष होने की सूचना उसके अपनों को मिल पाएगी या नहीं? शव का अंतिम संस्कार होगा या चील, कौवे, गिद्ध, कुत्तों, भेड़ियों का उत्सव बनेगा वह?...किसे पता।

गिरता हुआ धनीराम धरती की कठोरता से टकराकर खील-खील होने को ही था कि साँस अटकी रह गई...। पसीने में डूबा वह सपने से निकल आया। सिर के आसपास मच्छरों के झुण्ड भनभना रहे थे। पूरी देह में चिपचिपाहट और मुँह में थूक का क्रतरा न बचा था। चटकते गले में फाँसें चुभ रही थीं।

सिरहाने रखी डोलची से अध उबले पानी के दो चार घूँट गुटके उसने। समय का अनुमान लगाने आसमान की ओर मुँह उठाया किंतु बिजली की जगमगाहट में यहाँ न आकाश दिखता है न तारे। यहाँ रहने वालों को इनके बिना ही गुज़र करनी होती है। अनेक ने तो तारे यहाँ तस्वीरों में ही देखे हैं।...पेड़ शांत थे, पक्षी भी। दूर कहीं रेलगाड़ी चिल्ला रही थी। सूनी सड़क पर थोड़ी-थोड़ी देर में मोटरकारों चौंध मारती, फिसलती गुज़र जातीं। यह शहर चैनवाली नींद कभी नहीं सोता।

उसे बैठा देख खोखे के नीचे वाला कुत्ता कूँ-कूँ करता पास आ पूँछ हिलाने लगा। उसने सुबह के कलेऊ को तीन चुपड़ी रोटियाँ रख ली थीं...कुत्ता गंध पा

गया होगा। आसपास इसकी जातिवाला भी कोई नहीं है। सो जब तब अकेला ही भूँकता, किंकियाता, गुराता रहता है। रोटियों में टुकड़ा भर हिस्सा इसका भी है। कूँ-कूँ कर पूँछ हिलाता कुत्ता। धनीराम ने पास आने दिया। ...दुरदुराया नहीं। अकेलेपन का अहसास और भय पशु से भी तो टूटता है। रात का अब भी पता नहीं चल पा रहा था कि कितनी और बची है?

• • •